



संचेतना

2014-2015



MAHARSHI VALMIKI COLLEGE OF EDUCATION

(University of Delhi)

Geeta Colony

Delhi - 110 031



ॐ सहनावक्तु
सहनौभुनक्तु
सहवीर्यम् करवावहै
तेजस्विनावधीतमस्तु माविध्विशावहै
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

Oh GOD!

May YOU protect us both (pupil and teacher) together
May YOU nourish us both together
May we be blessed with knowledge together
May our knowledge be beneficial
May we never hate each other
Om Peace Peace Peace.

संचेतना

SANCHETNA

चेतना का सामूहिक बोध

Collective Experience of Consciousness

**Annual Magazine
2014-2015
(Issue : 8)**



MAHARSHI VALMIKI COLLEGE OF EDUCATION
(University of Delhi)
Geeta Colony
Delhi - 110 031

Sanchetna : Issue 8, 2014-2015

Credits

Dr. PK Sharma

(Officiating Principal, Maharshi Valmiki College of Education)

Editorial Team

Dr. Ramji Dubey

Ms. Meenakshi Chawla

Student Editors

Anuradha (English)

Monika Tanwar (English)

Nikita Goel (Hindi)

Vijay Kumar (Hindi)

Jaskirat Kaur Bhatia (Punjabi)

Assistant Student Editors

Aradhana (English)

Chhotu Mal (Hindi)

Aisha Parveen (Urdu)

Shabina Parveen(Urdu)

Facilitator

Mr. Reyaz Hashmi

Cover Design

Ms. Meenakshi Chawal

Issued for internal circulation by

Maharshi Valmiki College of Education,

University of Delhi, Geeta Colony

Delhi-110031

Contributors

Dr. Ramji Dubey, Himanshu, Pratibha, Vijay Kumar, Jaynath Choudhary, Ratnesh Tiwary, Anuradha, Meena, Asha, Avtar Singh, Gulshan Kumar, Nikita Goel, Mohd. Afaq, Sumit Kumar, Aradhana Bhardwaj, Dr. Satveer Singh Barwal, Ayushi Tyagi, Prof. Zubaida Habeeb, Ms. Sulekha Bhargava, Pravin Kumar Jha, Dr. Sushil Dhiman, Vivek Yadav, Rivika Chauhan, Ekjot Kaur, Diya Elizabeth Kurillose, Samdisha Alagh, Monika Tanwar, Sagar Khetwani, Ngampamphy Ruivah, Atiya Hasan, Dr. Neelam Mehta Bali, Ms. Anjana, Ms. Meenakshi Chawla, Shaagun Puri, Mohd. Raza, Shabina Parveen, Aisha Parveen, Mohd. Afaq, Jaskirat Kaur Bhatia.

From the Principal's Desk



Twenty years! ...indicates the time line. The glistening of a joyous satisfaction prevails and enralls one and all; the precincts of the college witness the twentieth group of students initiated in their transformational journey, a journey that promises change, a journey valued by many as a means as also an end. It is a unique journey - sequential but whole; fringed but continuous; cardinal yet evolutionary. Teachers aren't a singularity; they are often visualized a non-descript plurality - of thoughts, ideas and actions. They preside over a continual churning of a multitude of processes that are instrumental in the awakening of 'being'.

Sanchetna is a hazy reflection of the radiance of this journey. Beyond the course and the curriculum, it is an account of the students' experiential stirring; of invigorating cognition and consciousness echoing in varied ways. We value it the way it is, not often keen in scaling its critique, for its worth is not always in its present form but in its signatures on the canvas of the future.

We duly appreciate the editors for their painstaking efforts and we congratulate the students for their well-tuned efforts instrumental in making Sanchetna see the light of the day.

I am glad to offer the eighth volume of Sanchetna to you. It's for you to feel the pulse of it and caricature a glimpse of the future in the making.

Dr Parmesh Kumar Sharma
Officiating Principal

May 2015

EDITORIAL

The editorial team feels blessed with such a divine duty of contributing in the preparation of 'SANCHETNA', the annual college magazine which deals with inner consciousness of human beings. Some scholars consider it as collective consciousness as well. It has different connotations in different perspectives. The editorial team met all the challenges with unmatched zeal to bring out this promising issue. In addition to the previous components some of the remarkable and worth mentioning assembly addresses of some of the students have been included in this issue. The magazine is unique in its structure involving the composite culture of the mother India as it is divided into four sections - Hindi, English, Urdu and Punjabi. In common parlance it reflects the Ganga-Jamuni sanskriti of our country.

Since its inception M.V. College of Education has been engaged in spreading the message of Maharshi Valmiki who transformed Sita into an enlightened and empowered woman. There is no denying the fact that 'SANCHETNA' came into existence to provide a vibrant platform to the faculty members and the students through their reflective essays, poems, memoirs, stories and travelogues.

It is 'SANCHETNA' which transformed 'Ratnakar', the dacoit into Valmiki, the sage. It is hoped that this issue will help in initiating and sustaining the process of transformation thus awakening and empowering the collective consciousness.

The solemn endeavour of student editorial team has made this issue of 'SANCHETNA' possible. All the contributors to this magazine are also sincerely acknowledged for enriching the current edition. The editorial team is grateful to our esteemed Principal for his valuable support and guidance. We hope that our efforts will be appreciated by you.

-Editorial Team

हिन्दी

संचेतना

कॉलेज पत्रिका के नामकरण का प्रश्न तो अब समाधान पा चुका है लेकिन इस 'शब्द' की उत्पत्ति एवं उसका अर्थ अब भी हमारे अन्दर उद्वेलन पैदा करता रहता है। कल संपादक मंडल की बैठक में तय हुआ कि इस वर्ष की कॉलेज पत्रिका के सम्पादकीय के लिये इसके शीर्षक पर प्रकाश डालना सार्थक होगा। उसी दायित्व के निर्वहन में यह विचार सामने आया कि 'संचेतना' का वास्तविक अर्थ क्या है। महर्षि अरविन्द के चिन्तन से उपजी यह अवधारणा मानव के आध्यात्मिक विकास के चरमोत्कर्ष की ओर संकेत करते हुए मानवमात्र को यह संदेश देती है कि सृष्टि के चराचर सभी प्राणियों में मनुष्य ही एक मात्र प्राणी है जिसमें 'जीव' से ऊपर उठकर 'शिव' तक पहुँचने की क्षमता है। जिस समय इस धरा पर मानव का आविर्भाव हुआ उस समय वह मात्र एक हाड़-माँस का पुतला था। उसमें विचार उत्पत्ति, शुभ-अशुभ की संकल्पना, नैतिक-अनैतिक का भेद सब कुछ कालक्रम में पैदा हुआ।

तर्कबुद्धि और विवेक से ऊपर उठने के बाद मनुष्य ने जिस मंज़िल को प्राप्त किया उसे चेतना (Consciousness) के रूप में जाना जाता है। लेकिन यह मानव के मानसिक विकास का ही उत्कर्ष बिन्दु है। उसमें मात्र शरीर से उठकर मन तक की यात्रा का वर्णन है। उससे आगे की यात्रा हमें आत्मा और उसके पश्चात् परमात्मा तक ले जाने की है जिसे संचेतना (Super Consciousness) के नाम से जाना जाता है। महर्षि अरविन्द ने योग की परिभाषा देते समय इसे स्पष्ट किया है कि (Yoga means synthesis of body, mind and soul) संचेतना को मानव के आध्यात्मिक विकास का चरमोत्कर्ष माना जा सकता है। यह वह अवस्था है जहाँ नर नारायण से साक्षात्कार करता है और साक्षी भाव से जीवन को जीता है। जहाँ आत्मा और परमात्मा का दैत भाव स्वयमेव मिट जाता है। मैं इसे अहम् ब्रह्मस्मि को संकल्पना तो नहीं कहूँगा लेकिन यह परमानन्द की स्थिति अवश्य है।

'भारत की राष्ट्रीय संस्कृति' नामक प्रसिद्ध पुस्तक में समाजशास्त्री एस0 आबिद हुसैन का मानना है कि संस्कृति की उत्पत्ति के संबंध में विभिन्न मतों के दो पक्ष हैं - चैतन्यवादी और भौतिकवादी। दार्शनिक और इतिहासकार उनमें से एक या दूसरे के किसी रूप का समर्थन करते हैं या दोनों के बीच सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास करते हैं। पहले के अनुसार सांस्कृतिक विकास के क्रम में विशेष अवस्था पर किसी एक व्यक्ति या व्यक्तियों के समूह ने सर्वोच्च सत्ता से प्राप्त होने वाले अन्तर्ज्ञान, प्रेरणा या रहस्यात्मक अनुभूतियों के द्वारा उच्चतम मूल्यों या विचारों की दृष्टि प्राप्त की। उस दृष्टि ने विशेष सामाजिक परिवेश में कोई वस्तुनिष्ठ मानसिक स्वरूप ग्रहण किया और वह एक समूह का आदर्श बन गया जिसको बाद में किसी मानसिक तथा भौतिकवादी लक्षणों के रूप में विश्लेषण कर संस्कृति का रूप दिया गया। उदाहरण के लिये उस चैतन्यवादी मत के अनुसार वैदिक काल के ऋषियों को दैवी प्रेरणा या अन्तर्बोध से कोई विचार दृष्टि मिली। कालांतर में जिसने सामाजिक स्थितियों तथा आर्यों की बौद्धिक क्षमता के योग्य एक आदर्श का रूप ग्रहण कर लिया।

ईशावास्योपनिषद में संचेतना की व्याख्या अत्यन्त ही विषद्र रूप में की गई है। उपनिषद में जब मैंने उस संकल्पना की खोज शुरू की तो मुझे जानकर आश्चर्य हुआ कि इस पूरे प्रकरण को गीता से ज्यों का त्यों उठाकर उपनिषद में रखा गया है। ऋषियों को गीता पर अगाध विश्वास था और वे प्रत्येक सत्य के अन्वेषण के लिये गीता का सहारा लेते थे।

वास्तव में संचेतना की स्थिति वह स्थिति है जिसमें मनुष्य प्राणिमात्र को सर्वाधार परब्रह्म पुरुषोत्तम परमात्मा में देखता है और सर्वान्तर्यामी परम प्रभु परमात्मा को प्राणि मात्र में देखता है। वह कैसे किसी से घृणा या द्वेष कर सकता है। वह तो सदा सर्वत्र अपने परम प्रभु के ही दर्शन करता हुआ मन ही मन सबको प्रणाम करता है तथा सबकी सब प्रकार से सेवा करता है और उन्हें सुख पहुँचाना चाहता है।

‘यस्मिन् सर्वाणि भूतान्याप्मैवा भूद बिजानत तत को मोहः कः शोक एकत्व नुपश्यतः’ ।

इसका भावार्थ यह है कि जब मनुष्य परमात्मा को भली भाँति पहचान जाता है, जब उसकी सर्वत्र भगद् दृष्टि हो जाती है जब प्राणि मात्र में एकमात्र तत्व श्री परमात्मा को ही देखता है तब उसे सदा सर्वत्र परमात्मा के दर्शन होते रहते हैं। उस समय उसके अन्तःकरण में शोक, मोह आदि विकार कैसे रह सकता है! वह तो इतना आनन्द मग्न हो जाता है कि शोक उसके चिन्त प्रदेश में नहीं रह जाती। लोगों के देखने में वह सब कुछ करता हुआ भी वस्तुतः अपने प्रभु में ही क्रीड़ा करता है। उसके प्रभु और प्रभु के लीला के अतिरिक्त अन्य कुछ रह ही नहीं जाता। संचेतना की अवस्था को प्राप्त करने वाले मनुष्यों की विशेषता अत्यन्त ही सरल शब्दों में गीता के छठे अध्याय के तीसरे श्लोक में दी गई है।

यो मां पश्यति सर्वत्र एवं च मयि पश्यति ।

तत्याहं न पश्यामि स च मे न पश्यति ॥

यहाँ भगवान् सर्वव्यापक आत्म स्वरूप की बात कह रहे हैं कि जो पुरुष सम्पूर्ण जगत् में मुझे ही देखता है और सबको मुझ में ही देखता है उसके लिये मैं अदृश्य नहीं होता। उस श्लोक में उस ‘चैतन्य’ की बात की गई है। उसमें ब्रह्म से एकाकार होने की स्थिति का वर्णन है। यही संचेतना है। भगवान् उस अखंड अक्षर तत्व की बात कर रहे हैं। ऐसा आत्मवान तो भगवान् के साथ एक ही है। वह तो भगवान् के तद्रूप हो चुका है और भगवान् का सजातीय हो चुका है। ऐसा आत्मवान तो भगवान् का स्वरूप ही होता है। वह तो भगवान् ही है। ऐसे आत्मवान का जीवन आध्यात्मिक होता है। ऐसे आत्मवान का जीवन नित्य अध्यात्म तथा ज्ञान विज्ञान पर प्रकाश डालने वाला होगा। ऐसे आत्मवान का जीवन शास्त्रों की प्रतिमा और शास्त्रों का प्रमाण ही होगा।

डॉ. रामजी दूबे
(MVCE Faculty)

;

चरित्र का महत्त्व

चरित्र शब्द व्यक्ति के सम्पूर्ण व्यक्तित्व को प्रकट करता है। इसका शाब्दिक अर्थ है “अपने आप को पहचानना।” उपनिषद् में भी कहा गया है कि “आत्मा वारे श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः, नान्यतोऽस्ति विजानतः” अर्थात् अपने बारे में सुनो, उस पर चिन्तन करो, मनन करो और उसका साक्षात्कार करो। इसके अतिरिक्त अपने आप को या चरित्र को जानने का अन्य कोई दूसरा मार्ग नहीं है।

चरित्र किसी को उत्तराधिकार में नहीं मिलता। व्यक्ति अपने आचरण (चरित्र) से महान बनता है जन्म से नहीं। कोई भी व्यक्ति अच्छे या बुरे चरित्र के साथ जन्म नहीं लेता है। हाँ वह अच्छी-बुरी परिस्थिति में अवश्य जन्मता है जो उसके चरित्र निर्माण में भला-बुरा असर डालती है। किन्तु जब तक वह स्वयं प्रयास नहीं करेगा, तब तक चरित्र निर्माण मुमकिन नहीं है, चाहे वह किसी भी परिस्थिति में जन्मा हो। गीता में कहा गया है कि इन्द्रियों की प्रवृत्तियों पर संयम के बिना मनुष्य शुद्ध विचार नहीं कर सकता, वह बुद्धिमान नहीं हो सकता क्योंकि बुद्धि ही है जो परिस्थितियों की दासता को स्वीकार न करके मनुष्य का चरित्र बनाती है।

आज व्यक्ति का चरित्र अन्दर और बाहर एक जैसा नहीं रहा है। बाहर से तो वह सरल-स्वभाव, नम्रता एवं पवित्रता को दिखाता है किन्तु अन्दर से वह ईर्ष्या-द्वेष और छल-कपटों से भरा हुआ है। इसी बात की पुष्टि करते हुए ‘भूपिन्दर सेठी अमन’ नामक कवि ने लिखा है कि—

दोहरे चरित्र का बन रहा इन्सान है,
ऊपर से साधू किन्तु अन्दर से बेईमान है।
बदल-बदल कर अपने मुखौटों से
अपने चरित्र का कर रहा निर्माण है।
चरित्र वो आईना है, हर एक व्यक्ति का,
जो हमको कहता है कि कौन कितना महान है।
दुश्चरित्र के कारण इस लोक में क्या,
परलोक में भी, नहीं होता कल्याण है।
नज़रिया हर व्यक्ति का है अलग-अलग,
जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि, जैसा जिसका ध्यान है।
'अमन' जग में होगा चरित्र उसका ऊँचा,
गुरुवचनों पर होता जो कुर्बान है।

ऐसे व्यक्तियों का चरित्र उनके साथ कुछ समय बिताने से पता लग जाता है। इसी बात को दीपक भरतदीप के शब्दों में कहूँ कि—

तरक्की के रास्ते चमकदार हैं पर वह तबाही की तरफ़ भी जाते हैं।
कपड़े कितने भी सफ़ेद हो, चरित्र के दाग छिप नहीं पाते हैं।।

इसलिए हमें अच्छे कर्म करते हुए अपने चरित्र को उज्ज्वल बनाना चाहिए। जिन कार्यों को करते समय भय, शंका और लज्जा आए ऐसे कार्य नहीं करने चाहिए। ऐसा करने से हमारे द्वारा कोई गलत कार्य नहीं होगा और हमारे चरित्र पर कोई उंगली नहीं उठा सकेगा कि इस व्यक्ति की आदत या स्वभाव ऐसा या वैसा है। भर्तृहरि जो नीतिशतक के 84वें श्लोक में कहते हैं—

ऐश्वर्यस्य विभूषणं सुजनता शौर्यस्य वाक्संयमो,
ज्ञानस्योपशमः श्रुतस्य विनयो वित्तस्य पात्रे व्ययः।
अक्रोधस्तमस क्षमा प्रभवितुर्धर्मस्य निर्व्याजता,
सर्वेषामपि सर्व कारणमिदं शीलं पर भूषणम्।।

अर्थात्—सज्जनता का आभूषण ऐश्वर्य, शूरवीर का वाणी पर संयम, ज्ञान का शान्ति, शास्त्र का विनय, धन का सुयोग्य सत्पात्र में दान देना, तप का क्रोधाभाव (क्रोध को वश में करना), सामर्थ्यवान का क्षमा और धर्म का निश्चलता है परन्तु इन सभी का कारणभूत शील ही सबका सर्वोत्तम आभूषण है अर्थात् ये सभी आभूषण चरित्र को कुन्दन की तरह चमकाने का काम करते हैं। अतः इन गुणों को हमें अपने व्यवहार में सम्मिलित करने का प्रयत्न करना चाहिए क्योंकि चरित्र ही हर व्यक्ति की अमूल्य एवं महत्त्वपूर्ण सम्पत्ति है।

धन गया तो कुछ नहीं गया, यह फिर कमाया जा सकता है। स्वास्थ्य गया तो समझो थोड़ा कुछ गया, यह भी सम्भाला जा सकता है किन्तु चरित्र गया तो समझो कि सब कुछ चला गया। चरित्रहीन व्यक्ति समाज में ऐसे सुशोभित होता है जैसे हरे-भरे वन में सूखा हुआ पेड़।

इसी प्रसंग पर आधारित एक घटना है कि एक बार गेरुवे वस्त्र, सिर पर पगड़ी, हाथ में लाठी और कन्धे पर चादर डाले हुए स्वामी विवेकानन्द जी अमेरिका में वाशिंगटन के किसी मार्ग पर भ्रमण कर रहे थे। चलते-चलते उन्होंने अपने पीछे चलते हुए एक स्त्री-पुरुष के जोड़े को अपने वस्त्रों के संबंध में यूं कहते हुए सुना कि “देखो इस महाशय को” विवेकानन्द जी समझ गये कि अमेरिका-निवासी मेरी भारतीय वेश-भूषा को हीन दृष्टि से देखकर इसका मज़ाक उड़ा रहे हैं। अतः वे रुके और उस महिला को सम्बोधित करते हुए बोले- प्रिय बहन! इन कपड़ों को देखकर आश्चर्य मत करो। देखो, इस देश के पुरुषों को तो कपड़े ही सज्जन बनाते हैं किन्तु जिस देश का मैं निवासी हूँ वहाँ चरित्र ही व्यक्ति को सज्जन बनाता है। यह सुनते ही दोनों स्त्री-पुरुष शर्म से विवेकानन्द जी के चरणों में झुक जाते हैं। ये है चरित्र का महत्त्व। कहने का सार यह है कि चरित्रवान व्यक्ति हर जगह आदर एवं सम्मान प्राप्त करता है।

बुद्धिमान व्यक्तियों की प्रशंसा की जाती है,
 धनवान व्यक्तियों से ईर्ष्या की जाती है।
 बलशाली व्यक्तियों से डरा जाता है लेकिन
 चरित्रवान व्यक्तियों पर ही विश्वास किया जाता है।
 धीरज होने से दरिद्रता भी शोभा देती है,
 धुले हुए जीर्ण वस्त्र भी अच्छे लगते हैं।
 गरम होने पर घटिया भोजन भी स्वादिष्ट लगता है
 सुन्दर चरित्र के कारण कुरूपता भी शोभा देती है।

अतः सभी का विश्वास जीतते हुए धैर्य के साथ ऐसे ही महापुरुषों की जीवनी पढ़कर उनके गुणों को अपने व्यवहार में ढालते हुए अपने चरित्र को महान बनाने का प्रयास करें और प्रतिदिन अपने जीवन का स्वाध्याय करें, उस पर चिन्तन-मनन करें, यही आत्मनिरीक्षण हमारे चरित्र का निर्माण करेगा। अंत में –

डूबता है तो पानी को दोष देता है,
 गिरता है तो पत्थर को दोष देता है।
 ये इंसान भी कितना अजीब है,
 कुछ नहीं कर पाता है तो किस्मत को दोष देता है।

लोग कहते हैं कि किस्मत में जो लिखा है वही मिलता है, लेकिन मेरा ऐसा मानना है कि पुरुषार्थ करो जो किस्मत में नहीं लिखा वह भी मिल जाएगा।

हिमांशु

बुद्धि के साथ सरलता, नम्रता तथा विनय के योग से ही सच्चा चरित्र बनता है।

—अज्ञात

इंसान की पहचान

किसी के काम आ जाए
उसे इंसान कहते हैं।
पराया दर्द जो अपनाए
जो दूसरो के दर्द को कम करे
उसे इंसान कहते हैं।

यह दुनिया है, कहीं उलझनें हैं
कहीं धोखा है, कहीं ठोकरे हैं
कोई हँस-हँस कर जीता है
कोई रो-रोकर जीता है।

जो गिरकर संभल जाए
उसे इंसान कहते हैं।
मुश्किलों में जो न घबराए
जो मुश्किलों को आसानी से सुलझाए
उसे इंसान कहते हैं।

अगर गलती रुलाती है
तो पथ भी दिखलाती है
मनुष्य गलती का पुतला है
जो अक्सर हो ही जाती हैं।

जो गरीबों की सहायता करे
जो सभी इंसान को समान समझे
जो कभी किसी का बुरा न करें
उसे इंसान कहते हैं।

जो भगवान को मानता हो
जो बुराइयों से दूर हो
जो सद्गुणों से भरपूर हो
उसे इंसान कहते हैं।
जो गलती करके पछताए
उसे इंसान कहते हैं।

प्रतिभा

वो सपने

पहली दफ़ा इन आँखों ने
देखे कुछ सपनें रंगीन
कुछ थे धुंधले
और कुछ बड़े महीन।

पले ये मुझमें, मैं इनमें
लगभग वर्ष दो-तीन
डूबा रहा भीतर इनके
अन्य सब हुआ दृश्यहीन।

खुश रहें, थे जब तक मेरे
बयां कर हो गए ग़मगीन
शोक कभी, अफ़सोस कभी होता है
ओह ! अपराध हुआ ये बड़ा संगीन।

मनुष्य का स्वभाव है देखना
देखना सपनें अंतहीन
होने दूंगा अब नहीं
सपनें अपने दिशाहीन।

भावनाओं में विमूढ़ मैं
हो चला था लक्ष्यहीन
सुननी होगी समय की पुकार
हो ना जाऊं कहीं कर्महीन।

विजय कुमार

जीवन पर अनोखे विचार

गर आसां होता जीना, तो लोग खुदकुशी न करते,
गर मरना भी होता आसां तो लोग मौत से यूँ न डरते,
आसां तो इस दुनिया में कहीं कुछ भी नहीं है,
जो ठान लो करने का आसां बस वही है।

जीवन क्या है ? ये जीवन क्यों है ? क्या जीवन बहुत खूबसूरत हैं या फिर दुःखों का समंदर है ? हमारे जीवन का क्या कोई अर्थ है या जीवन हमारा यूँ ही व्यर्थ है ?

बहुत से दार्शनिक और विचारक जीवन के कई सवालों का युगों-युगों से जबाब ढूँढने का प्रयास करते रहे हैं। सभी ने जीवन को अपने-अपने ज्ञान और अनुभव की रोशनी में जाँचा-परखा और उसकी गुत्थियों को सुलझाने की कोशिश की पर जितना सुलझाने की कोशिश की उतना ही उलझते गये और इसे सुलझाते-सुलझाते एक दिन खुद ही सुलझ गये। कुछ साधु बन गये, कुछ संन्यासी बन गये, कुछ ने घर-बाहर, राज-पाठ छोड़ दिया। तो इससे पता चलता है कि जीवन को हम जितना आसान समझते हैं वास्तव में यह उतना आसान नहीं हैं बल्कि अनेकों रहस्यों से भरा हुआ है, जो कहीं-न-कहीं हमारी सोच और समझ से भी परे है।

“जीवन का सार अनोखा है, यह संसार अनोखा है। बनते-बिगड़ते रिश्तों का यहां व्यवहार अनोखा है।”

मैं कोई दार्शनिक नहीं हूँ, दर्शन में मेरा काम नहीं है। पर दर्शन के बगैर जीना भी यहाँ आसान नहीं है क्योंकि बिना दर्शन के जीने वाला यहाँ कोई इंसान नहीं है। यह जीवन एक सिनेमा है और विश्व एक पर्दा जहाँ हम सब अपनी-अपनी भूमिका निभाते हैं। क्या अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए जीना ही जीवन है? या फिर समाज और राष्ट्र के जो काम आये वह जीवन है अर्थात् जीवन क्या त्याग और बलिदान का नाम है? हमारा शरीर थक जाता है, जर्जर हो जाता है, पर जीवन चलता रहता है। अतः एक कवि द्वारा कहा भी गया है—

“मृत्यु एक सरिता है जिसमें श्रम से जीव नहाकर, फिर नूतन धारण करता है। काया रूपी वस्त्र बहाकर।”

आप वृक्ष को देखें मूक बनकर। अपने जीवन के अंतिम चरण तक जब जीवित रहते हैं तब और जब उनमें प्राण नहीं होते हैं तब भी अपने सभी भागों के द्वारा या उसे त्यागकर भी इस लोक का भला ही करते रहते हैं। अपना दुःख किसी को नहीं सुनाते केवल संसार हित में अपना सर्वस्व लुटाते हैं। कुछ नहीं मांगते हैं! क्या हमारे जीवन का भी अर्थ त्याग और बलिदान होना चाहिए?

बीज नहीं दिखता है, लेकिन वृक्ष उसी से उगता है
नींव नहीं दिखती है, लेकिन भवन उसी पर टिकता है
वायु नहीं दिखती है, लेकिन जीवन का आधार है
जो भी आज हकीकत है, वह कल का एक विचार है।

युगों-युगों से ये जीवन से जुड़े हुए प्रश्न बने हुए हैं और बने रहेंगे। ये पूर्व में भी मानवों के लिए चुनौती थे और आज भी इनके अर्थ और रहस्य मानवों के लिए चुनौती है। मैं आप सबको जीवन के प्रश्नों के साथ छोड़कर जा रहा हूँ और अपने शब्दों को विराम दे रहा हूँ।

जयनाथ चौधरी

जीवन का सौंदर्य

“जीवन का सौंदर्य”— यह प्रसंग अपने आप में इतना व्यापक है कि इसके कई आयाम हो सकते हैं और इस पर सब के अपने-अपने विचार हो सकते हैं तथा उन विचारों में एक विरोधाभास भी।

सौंदर्य को परिभाषित करना काफ़ी कठिन है। सौंदर्य है सुन्दर मन, मन की पवित्रता। सौंदर्य जब रूप लेता है तो वह स्थूल (Physically Present) बन जाता है और हम उसे अपने इन्द्रियों से अनुभव कर सकते हैं। कई बार यह हमारे जीवन के करीब होता है तथा हम इसका अनुमान नहीं लगा पाते। इससे अपरिचित रहते हैं और हम अपनी दिनचर्या में अपनी विवशता के चलते इसके रसास्वादन से वंचित हो जाते हैं।

एक छोटी सी घटना याद आ रही है। चांग-चिंग एक बड़े कवि और सौंदर्य पारखी थे। कहते हैं चीन में उस जैसा सौंदर्य का दार्शनिक नहीं हुआ। उसने सौंदर्य-शास्त्र पर बहुमूल्य ग्रंथ लिखे हैं। बीस साल तक ग्रंथों में डूबा रहा। सौंदर्य क्या है इसकी तलाश करता रहा। एक रात, आधी रात, किताबों में डूबा-डूबा उठा, पर्दा सरकाया, द्वार के बाहर झांका। पूरा चांद आकाश में था। चिनार के ऊंचे दरख्त जैसे ध्यानस्थ खड़े थे। मंद समीर बह रही थी। फूलों की गंध उसकी नासिका तक आई। कोई एक पक्षी, जलपक्षी ज़ोर से चीखा और उसकी चीख में कुछ घटित हुआ। चांग-चिंग अपने आप से ही जैसे बोल उठा—“हाउ मिस्टेकन आइ वाज! हाउ मिस्टेकन आइ वाज! रेज़ द स्क्रीन एंड सी द वल्ड। कैसी भूल में मरा था मैं। कितनी भूल में था मैं।” पर्दा उठाओ और जगत को देखो। बीस साल किताबों में उसे सौंदर्य का पता न चला। पर्दा हटाया और सौंदर्य सामने खड़ा था साक्षात्।

ठीक इसी प्रकार हर समय दिव्य सौंदर्य हमें घेरे हुए है। बस हम इसका अनुभव नहीं कर पाते हैं। हममें से बहुतेरे तो दिन रात की आपाधापी में इसका अंश मात्र भी नहीं देख पाते। उगते हुए सूरज की अक्षत लालिमा, चाय के पतीले से उठती हुई महक, दफ़तर में या सड़क में किसी परिचित की कुछ कटती हुई सी झलक, ये सभी सुन्दर लम्हें हैं।

जब हम सौंदर्य पर विचार करते हैं तो ज़्यादातर लोगों के मानस में खूबसूरत वादियाँ और सागरतट, फिल्मी तारिका, महान पेंटिंग या अन्य किसी भौतिक वस्तु की छवि उभर आती है। मैं जब से जब इस बारे में गहराई से सोचता हूँ तो मुझे लगता है कि जीवन में मुझे वे वस्तुएं या विचार सर्वाधिक सुंदर प्रतीत होते हैं जो इन्द्रियातीत हैं अर्थात् जिन्हें हम छूकर या चखकर यहाँ तक कि देखकर भी अनुभव नहीं कर सकते। वे अनुभव अदृश्य हैं फिर भी मेरे मन मस्तिष्क पर वे सबसे गहरी छाप छोड़ जाते हैं। मुझे यह भी लगता है कि वे प्रयोजनहीन नहीं हैं। ईश्वर ने उनकी रचना की पर उन्हें हमारी इन्द्रियों की परिधि से बाहर रख दिया ताकि हम उन्हें औसत और उथली बातों के साथ मिलाने की गलती नहीं करें।

हमें वास्तविक प्रसन्नता और सौंदर्य का बोध कराने वाले वे अदृश्य या अमूर्त प्रत्यय कैसे हैं? वे सहज सुलभ होते हुए भी हाथ क्यों नहीं आते? इसमें कैसा रहस्य है? क्या है वह? क्या वह सेवा है, परोपकार है? हर पल को सुख पूर्वक जीना है या फिर प्रेम है?

सेवा जीवन के सौंदर्य के रूप में

महाभारत में एक प्रसंग आता है, यक्ष-युधिष्ठिर संवाद। यक्ष ने युधिष्ठिर से एक प्रश्न किया था—“लोक में श्रेष्ठ धर्म क्या है?” इसके उत्तर में युधिष्ठिर ने कहा था “समाज में और संसार में दया ही श्रेष्ठ धर्म है।” अगर अपने से दीन-हीन, असहाय, अभावग्रस्त, आश्रित, वृद्ध, विकलांग, ज़रूरतमंद व्यक्ति पर दया दिखाते हुए उसकी सेवा और

सहायता न की जाये तो समाज भला कैसे उन्नति करेगा? सच तो यह है कि सेवा से मानव जीवन का सौंदर्य और श्रृंगार। सेवा से पुण्य की बात तो सही है। इससे हमें असीम संतोष एवं शांति भी प्राप्त होती है। परोपकार एक ऐसी भावना है जिससे दूसरों का तो भला होता ही है, खुद को भी आत्मसंतोष प्राप्त होता है। मानव प्रकृति भी यही है कि जब वह इस प्रकार की किसी उचित या उत्तम दिशा में आगे बढ़ता है और इससे उसे जो उपलब्धि प्राप्त होती है, उससे उसका आत्मविश्वास बढ़ता है।

प्रकृति भी मनुष्य को कदम-कदम पर परोपकार की यही शिक्षा देती है। हमें प्रसन्न रखने और सुख देने के लिए फलों से लदे पेड़ अपनी समृद्धि लुटा देते हैं। पेड़ पौधे, जीव जंतु उत्पन्न होते हैं, बढ़ते हैं और मानव का जितना भी उपकार कर सकते हैं करते हैं तथा बाद में प्रकृति में लीन हो जाते हैं। उसके ऐसे व्यवहार से हमेंशा लगता है कि इनका अस्तित्व ही दूसरों के लिए सुख-साधन जुटाने के लिए हुआ है। सूर्य धूप का कोष लुटा देता है और बदले में कुछ नहीं मांगता। चंद्रमा अपनी शीतल चांदनी से रात्रि को सुशोभित करता है, शांति की ओस टपकाता है। और वह भी बिना कुछ मांगे व बिना किसी भेद भाव के। प्रकृति बिना किसी भेद-भाव के अपने कार्य में लगी हुई है और इससे संसार चक्र चल रहा है।

ऋषि-मुनियों ने बार-बार कहा है कि धरती पर जन्म लेना उसी का सार्थक है जो प्रकृति की भांति दूसरों की भलाई में प्रसन्नता का अनुभव करें। एक श्रेष्ठ मानव के लिए सिर्फ परोपकार करना ही काफी नहीं है, बल्कि इसके साथ-साथ देश और समाज की भलाई करना भी उसका धर्म है। बेशक आज के युग में कुछ ऐसे व्यक्ति हैं जो सुखों को छोड़कर दूसरों की भलाई करने में और दूसरों का जीवन बचाने में अपना जीवन व्यतीत कर रहे हैं, पर साथ ही कुछ ऐसे अभागे इंसान भी हैं जिन्हें आतंक और अशांति फैलाने में आनन्द की अनुभूति होती है। ऐसे लोग मानव होते हुए भी क्या कुछ खो रहे हैं इसका उन्हें ऐहसास नहीं है। गीता में लिखा है जो सब प्राणियों का भला करने में लगे हैं, वे मुझे प्राप्त होते हैं। 'सर्वजन हिताय, सर्वजन सुखाय'—इस भाव को अपनाकर ही देश और समाज का भला हो सकता है। सेवा या परोपकार की भावना चाहे देश के प्रति हो या किसी व्यक्ति के प्रति, वह मानवता है।

हर पल को सुख पूर्वक जीना सौंदर्य है

हर पल को सुखपूर्वक जीने के लिए दुःख की ईंट को हटाकर सुख की ईंट को रखना होगा जो एक सुखी समाज के लिए आवश्यक है। यदि नये समाज को जन्म देना है तो दुःख के साथ-साथ सब सुखों को सहज स्वीकार कर लें। निश्चित ही बूँद-बूँद सुख आते हैं, इकट्ठा सुख नहीं बरसता है। इकट्ठा पानी भी नहीं बरसता है, बूँद-बूँद सब बरस रहा है। उस बूँद को स्वीकार कर लेना पड़ेगा। क्षण ही हमारे हाथ में आता है। एक क्षण से ज्यादा किसी के हाथ में नहीं आता। उस क्षण में ही जीना है, उस क्षण में ही सुख को पूरा का पूरा पी लेना है। क्षण को पीने की कला सुख-सृजन की कला है। आदमी सुखी हो सकता है अगर वह प्रतिक्षण जो उसे मिल रहा है उसे पूरे अनुग्रह से और पूरे आनन्द से आलिंगन कर ले।

जब तक फूल जिंदा है तब तक उसके सौंदर्य को जिया जा सकता है और जिस व्यक्ति ने जिंदा फूल के सौंदर्य को जी लिया, वह जब फूल मुरझाता है और गिरता है, तब वह सौंदर्य से इतना भर जाता है कि फूल की संध्या और गिरती हुई पंखुड़ियाँ भी फिर से उसे सुंदर मालूम पड़ती हैं। आँख में सौंदर्य भर जाये तो पंखुड़ियों का गिरना उनके खिलने से कम सुंदर नहीं है। आँख में सौंदर्य भर जाये तो बचपन से ज्यादा सौंदर्य बुढ़ापे का है।

जो सौंदर्य को नहीं जीता है उसके लिए सांझ कुरूप हो ही जाएगी। मैं समझता हूँ कि अगर एक नया मनुष्य पैदा करना है जो कि नये समाज के लिए ज़रूरी है तो हमें हर क्षण में सुख लेने की क्षमता और क्षण में सुख लेने का आदर और अनुग्रह पैदा करना होगा। हमें यह कहना बंद कर देना पड़ेगा कि सांझ में फूल मुरझा जाएगा। सांझ तो आएगी,

लेकिन सांझ का अपना सौंदर्य होगा जिसकी किसी से तुलना करने की कोई ज़रूरत नहीं है। जिंदगी का अपना सौंदर्य है, मृत्यु का अपना सौंदर्य है, दीये के जलने का अपना सौंदर्य है, दीये के बुझने का अपना सौंदर्य है, चांदनी रात ही सुंदर नहीं होती अमावस की रात का भी अपना सौंदर्य है। यह सब जो देखने में समर्थ हो जाता है, वो सब चीज़ों से सौंदर्य और सब चीज़ों से सुख पाना शुरू कर देता है।

प्रेम का सौंदर्य

प्रेम क्या है? व्यक्ति के मध्य भावनात्मक सम्बन्ध का नाम ही प्रेम है। प्रेम मानसिक एवं शारीरिक दोनों प्रकार का होता है। प्रेम भावना का उदय नर-नारी के प्रथम अस्तित्व के साथ ही हुआ। मनुष्य ने रुमानी भावनाओं व कल्पनाओं से अपनी प्रेम सम्बन्धी भावनाओं को इस प्रकार आहत किया कि शारीरिक एवं भौतिक प्रेम संस्कृति में परिवर्तित हो गया। भारतीय दर्शन के अनुसार प्रेम की अन्तर अनुभूति ही सच्चे व स्थायी प्रेम की सूचक है। मानव मन की गहराईयों में अनुभूत प्रेम सर्वोत्कृष्ट और महान जीवन और संस्कृति द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। प्रेम का बीज सर्वप्रथम सृष्टि में मानव जीवन के साथ-साथ ही प्रस्फूटित हुआ।

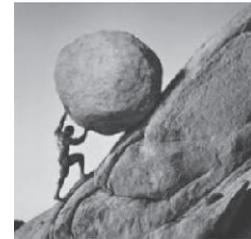
आप कहेंगे हम सब प्रेम करते हैं। पर आप शायद ही प्रेम करते हैं, आप प्रेम चाहते हैं। इन दोनों में ज़मीन आसमान का फ़र्क है। प्रेम करना और प्रेम चाहना दो बड़ी अलग बात हैं। हममें से बहुत लोग बच्चे ही रहकर मर जाते हैं। प्रेम चाहना बिल्कुल बच्चों जैसी बात है क्योंकि प्रेम चाहा नहीं जाता केवल किया जाता है। चाहने पर पक्का नहीं कि मिलेगा और जिससे आप चाह रहे हैं वह भी आप से चाहेगा तो बड़ी मुश्किल हो जाएगी। दो भिखारी मिलेंगे और भीख मांगेंगे और देने में कोई सक्षम नहीं तो टकराव बढ़ता है। दुनिया में जितना संघर्ष है चाहे वह पति पत्नियों का हो या अन्य किसी रिश्ते का, उसका कारण केवल एक ही है—हम एक दूसरे से प्रेम चाहते हैं और देने में कोई समर्थ नहीं है।

इस पर थोड़ा विचार करके देखना अपने मन के भीतर। हमारी आकांक्षा प्रेम चाहने की है पर हम हमेशा चाहते हैं कि कोई हमें प्रेम करे। जहाँ शर्त नहीं होती वहीं सच्चा प्रेम जन्म लेता है। जहाँ लोभ नहीं होता वहीं सच्चा प्रेम पलता है। जहाँ स्वार्थ नहीं होता वहाँ सच्चा प्रेम परिपक्वता को प्राप्त करता है और जहाँ तीनों नहीं होते वहीं सच्चा प्रेम टिकता है बाकी सब लेन-देन है।

रत्नेश तिवारी

जीवन—एक संघर्ष

संघर्ष है मेरा, है तेरा भी,
जीवन की बगिया में सांझ है, सवेरा भी
आती हैं मुश्किलें, काँटों के पथ भी
दुखती हैं आँखें, अशकों के बिन भी
चलना आसान नहीं, मुश्किल डगर है
रख हौंसला ऐ बन्दे, अभी और सफ़र है।



संघर्ष है मेरा, है तेरा भी
बगिया में सांझ है, सवेरा भी
अभी पतझड़ है तो क्या, फिर बहार आएगी
नदियों की धारा, संगम में मिल जाएगी ।
अभी गिरे हो, सहारा भी मिलेगा
रख हौंसला ऐ बन्दे, अभी किनारा भी मिलेगा।

अनुराधा

अमूल्य धन

समय का चक्र अपनी गति से चल रहा है या यूँ कहें कि काम कर रहा है। अक्सर इधर-उधर कहीं न कहीं, किसी न किसी से ये सुनने को मिलता है कि क्या करें समय नहीं मिलता।

वास्तव में हम निरंतर गतिमान समय के साथ कदम से कदम मिला कर चल ही नहीं पाते और जिसके कारण हम पिछड़ जाते हैं। समय जैसे मूल्यवान सम्पदा का भंडार होते हुए भी हम हमेशा उसकी कमी का रोना रोते रहते हैं क्योंकि हम इस अमूल्य समय को बिना सोचे समझे खर्च देते हैं। विकास के सफ़र में समय की बर्बादी हमारी जिंदगी में किया हुआ सबसे बड़ा नुकसान है। एक बार हाथ से निकला हुआ समय वापस नहीं आता। हमारा बहुमूल्य वर्तमान क्रमशः भूत बन जाता है और जो कभी नहीं आता। सच कहा है बीता हुआ समय और बोले हुए शब्द वापस नहीं आते। कबीर दास जी ने कहा है –

काल करे सो आज कर, आज करें सो अब।
पल में परलै होगी, बहुरी करेगा कब।।

सच ही तो है किसी भी काम को कल पर नहीं टालना चाहिए क्योंकि आज का कल पर और कल का काम परसों पर टालने से अधिक हो जाएगा। बासी काम, बासी भोजन की तरह अरुचिकर हो जाएगा। समय जैसे बहुमूल्य धन को सोने चांदी की तरह रखा नहीं जा सकता क्योंकि समय तो गतिमान है। इस पर हमारा अधिकार तभी तक है जब तक हम इसका सदुपयोग करें अन्यथा यह नष्ट हो जाता है। समय का उपयोग धन के उपयोग से कहीं अधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि हम सभी की सुख-सुविधा इसी पर निर्भर करती है।

चाणक्य के अनुसार जो व्यक्ति जीवन में समय का ध्यान नहीं रखता, उसके हाथ असफलता और पछतावा ही लगता है। समय जितना कीमती और वापस न मिलने वाला तत्व है उतना उसका महत्व हम लोग प्रायः नहीं समझते। परन्तु जो लोग इसके महत्व को समझते हैं वो विश्वपटल के इतिहास पर सदैव विद्यमान रहते हैं। ईश्वर चंद्र विद्यासागर समय के बड़े पाबंद थे जब वो कॉलेज जाते तो रास्ते के दुकानदार अपनी घड़ियां उन्हें देखकर ठीक करते थे।

ऐसे ही एक महान व्यक्ति और हुए जिनका नाम था गैलिलियो। गैलिलियो दवा बेचने का काम करते थे। उसी में थोड़ा-थोड़ा समय निकालकर विज्ञान के अनेक अविष्कार कर दिए। घर गृहस्थी के व्यस्त भरे समय में हैरियत वीरस्टो ने गुलाम प्रथा के विरुद्ध आग उगलने वाली पुस्तक “टाम काका की कुटिया” लिख दी जिसकी प्रशंसा आज भी बेजोड़ रचना के रूप में की जाती है।

शिक्षा में समय का सदुपयोग बहुत महत्वपूर्ण है। शिक्षा भूत और भविष्य के साथ-साथ वर्तमान पर अधिक बल देती है। हम अपने वर्तमान जीवन में कैसे जीते हैं, कैसे सीखते हैं और कैसे अनुभव प्राप्त करते हैं ये सारी चीज़ें हमारे जीवन शैली को अत्यधिक प्रभावित करती हैं। भविष्य में क्या होगा इसको अलग रखते हुए शिक्षा विचार, चिंतन व रुचि को ध्यान में रखकर दी जाती है।

जॉन डीवी ने इस पर अपने विचार देते हुए कहा है कि शिक्षक को छात्रों की रुचि क्षेत्र को पहचानना आवश्यक है जिससे वह छात्रों का मार्गदर्शन कर सके। समय का प्रबंधन प्रकृति में स्पष्ट समझा जा सकता है। समय का कालचक्र प्रकृति में निर्मित है। दिन-रात, ऋतुओं का समय पर आना जाना यदि कभी भी अनियमित होता है तो विनाश की लीला भी प्रकृति सिखा देती है।

समय की उपेक्षा करने पर कई बार विजय का पासा पराजय में पलट जाता है। नेपोलियन ने ऑस्ट्रिया को इसलिए

हरा दिया क्योंकि वहां के सैनिकों ने पाँच मिनट का विलंब कर दिया था, लेकिन वहीं कुछ ही मिनटों में नेपोलियन बंदी बना लिया गया क्योंकि उसका एक सेनापति विलंब से आया। वाटरलू के युद्ध में नेपोलियन की पराजय का सबसे बड़ा कारण समय की अवहेलना ही तो था! कहते हैं—

खोई दौलत फिर कमाई जा सकती है।
भूली विद्या फिर पाई जा सकती है।
किंतु खोया हुआ समय पुनः वापस नहीं लाया जा सकता।
इसे पाते वही हैं जो इसका सही उपयोग करते हैं।

जापान के नागरिक ऐसा ही करते हैं वे छोटी मशीनों या खिलौनों के पुर्जों से अपने व्यावसायिक कार्य से फुर्सत मिलने पर नियमित रूप से एक नया खिलौना या मशीन बनाते हैं। इस कार्य से उन्हें अतिरिक्त धन की प्राप्ति होती है। उनकी खुशहाली का सबसे बड़ा कारण समय का सदुपयोग है। समर्थ गुरु स्वामी रामदास जी कहते हैं कि—

एक सदैव पणाचै लक्षण।
रिकामा जाऊँ ने दो एक क्षण।

अर्थात् जो मनुष्य वक्त का सदुपयोग करता है एक क्षण भी बर्बाद नहीं करता वह बड़ा सौभाग्यवान् होता है। समय तो उच्चतम शिखर पर पहुंचने की सीढ़ी है। जीवन का महल समय के घंटों—मिनटों की ईंट से बनता है। प्रकृति ने किसी को भी अमीर गरीब नहीं बनाया। उसने अपनी बहुमूल्य सम्पदा अर्थात् चौबीस घंटे सभी को बराबर बाँटे हैं। मनुष्य कितना परिश्रमी क्यों न हो परन्तु समय पर काम न करने से उसका श्रम व्यर्थ चला जाता है। जैसे वक्त पर न काटी फसल नष्ट हो जाती है। असमय बोया बीज बेकार चला जाता है। जीवन का प्रत्येक क्षण एक उज्ज्वल भविष्य की संभावना लेकर आता है। क्या पता जिस क्षण को हम व्यर्थ समझकर बर्बाद कर रहे हैं वही पल हमारे लिए सौभाग्य की सफलता का क्षण हो।

आने वाला पल तो आकाश कुसुम की तरह है। इसकी खुशबू से स्वयं को सराबोर कर लेना चाहिए। फ्रेंकलीन ने कहा है— समय बर्बाद मत करो क्योंकि समय से ही जीवन बना है। अतः यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि वक्त और सागर की लहरें हर किसी का इंतज़ार नहीं करते। वक्त बंद मुट्ठी में रेत की तरह होता है जो रुकता नहीं बीतता चला जाता है।

मीना

समय और समझ दोनों एक साथ खुशकिस्मत लोगों को ही मिलते हैं क्योंकि
अक्सर समय पर समझ नहीं आती और समझ आने पर समय निकल जाता है।

—गुरविंदर

समय की कीमत पहचानो

आलस छोड़ो, बनो परिश्रमी
समय की कीमत पहचानो,
अपनी देह में छिपा खजाना
मोल उस का तुम जानो।

श्रेष्ठ कर्म ही करना है
दिये प्रभु ने तुमको हाथ
दान, धर्म, परोपकार ही
जाता है मानव के साथ।

कभी नहीं कुपंथ पर चलना
पग की गरिमा मिट जाएगी
ईश्वर के 'पद' जो पूजित हैं
उनकी महिमा घट जाएगी।

नयन दिये हैं तुम्हें प्रभु ने
भाव साम्य से जग को देखो,
कोई न छोटा, बड़ा न कोई
भेदभाव सब बाहर फेंको।

वाणी का उपहार दिया है
'मानवता' का सृजन करो
हाथ जोड़कर परम ब्रह्म को
शत्-शत् बार नमन करो।

आशा



मैंने भगवान से मांगी शक्ति, उसने मुझे दी कठिनाईयाँ,
हिम्मत बढ़ाने के लिए।



मैंने भगवान से मांगी बुद्धि, उसने मुझे दी उलझनें,
सुलझाने के लिए।



(Taken from Dr. Sushil Dhiman)

स्वतः अनुशासन की अनिवार्यता

दशमा सिख पातशाही साहिब श्री गुरु गोविन्द सिंह जी ने फरमाया है— “देह शिवा बर मोहे, शुभ करमन तो कबहू ना टरौ । ना तरों अरी सो जब जाये लरौं, निश्चय कर अपनी जीत करौं ।

इस प्रकार जीवन में कुछ भी असम्भव नहीं है यदि किसी वस्तु की प्राप्ति में उद्देश्य के साथ सत्य जुड़ा हो । जीवन में स्वतः अनुशासन की स्थापना भी कठिन नहीं है ।

कुछ लोग मनुष्य को पूर्ण स्वतंत्रता देने के पक्षधर होते हैं किंतु यह संभव नहीं क्योंकि पूर्ण स्वतंत्रता का अर्थ इस दृष्टि से यह होगा कि मनुष्य पर कोई भी बन्धन न लगे । अतः पूर्ण स्वतंत्रता व्यावहारिक रूप में मान्य नहीं हो सकती । इसके साथ ही इतने अधिक बन्धन भी नहीं लगने चाहिये जिससे अनुशासन के नाम पर डर या भय की उत्पत्ति हो क्योंकि भय मनुष्य के जोश व आन्तरिक गुणों का सर्वनाश कर देता है । इससे व्यक्ति को स्वयं के विकास का अवसर नहीं मिल पाता । अतः यहाँ ज़रूरत एक ऐसे अनुशासन की है जिसमें व्यक्ति को पूर्ण स्वतंत्रता भी न मिले तथा उनमें भय भी प्राप्त न हो । यह अनुशासन व्यक्ति में आज्ञा पालन की ज़रूरत को स्वयं समझने का गुण विकसित करता है । इसे हम अन्य शब्दों में स्वतः अनुशासन का नाम दे सकते हैं ।

स्कूल अनुभव कार्यक्रम (S. E. P.) के दौरान कक्षा में सभी प्रशिक्षु अध्यापकों ने अनुशासन बनाने का प्रयास किया । उस समय हम सभी एक आदर्श अध्यापक की भूमिका को अपनाते हुए नज़र आये जो अपने छात्रों को कुछ नियम व कानूनों के भीतर रखते हैं ताकि शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को सुचारु रूप से सम्पन्न किया जा सके । उस दौरान मैंने अनुभव किया कि अनुशासन बनाने का परम्परागत तरीका उचित नहीं है क्योंकि इसमें भय के कारण कुछ देर के लिए आपकी बातों को मानकर अनुशासित होने का झूठा दिखावा किया जाता है किंतु आपकी पीठ पीछे अनुशासन भंग हो जाता है । अतः आवश्यकता स्वतः अनुशासन को अपनाने की है ।

एक बार मैं विद्यालय से भागकर कुछ सहपाठियों के साथ फिल्म देखने चला गया । मैंने सोचा था कि 3 बजे से 6 बजे तक का शो देखकर मैं पुनः विद्यालय आ जाऊँगा तथा वहाँ से अपना बैग लेकर घर चला जाऊँगा । घर वाले यही सोचेंगे कि मैं विद्यालय से पढ़कर आ रहा हूँ । मेरे विद्यालय की शाम 6:30 बजे छुट्टी होती थी । यही सोचकर मैंने अनुशासनहीनता का परिचय दिया । किसी कारणवश उस दिन विद्यालय की छुट्टी जल्दी हो गई । मेरा बस्ता लेकर मेरा एक सहपाठी मेरे घर आ गया । उसने परिवार के सदस्यों को सब बता दिया । फिल्म देखकर मैं जैसे ही सिनेमा हॉल के बाहर आया तो अपने पिताजी को वहाँ खड़े देखा । वे मुझे ही देख रहे थे । पास आकर उन्होंने मुझसे पूछा कि फिल्म कैसी रही?

पिताजी के मुँह से ये शब्द सुनकर मैं शर्म से पानी-पानी हो गया । मेरा चेहरा नीचे झुक गया । उस दिन से मैंने प्रण किया कि भविष्य में कभी अनुशासन को भंग नहीं करूँगा । यदि कुछ करूँगा तो पहले घर वालों को उसकी सूचना दूँगा । वह दिन और आज का दिन है, मैंने कभी अनुशासन भंग नहीं किया । यदि पिताजी मुझे मारते या डाँटते तो शायद मैं भविष्य में अनेक बार अनुशासन को भंग करता किंतु उनका नम्र व्यवहार जो कटाक्ष की तरह मुझे लगा मुझे स्वतः अनुशासन के लिए प्रेरित कर गया । हालांकि स्वतः अनुशासन व्यक्ति की स्वयं की इच्छा से संबंधित होता है, इसे बनाये जाने की प्रेरणा बाहरी वातावरण से भी प्रभावित हो सकती है । मैंने अपनी इच्छा से अनुशासन का पालन करना स्वीकार किया । इस प्रकार स्वतः अनुशासन का संबंध मूल्यों से भी है ।

स्वतः अनुशासन का महत्त्व केवल छात्र जीवन में ही नहीं है बल्कि मनुष्य के पूरे जीवन में है । सड़क पर गाड़ी चलाते समय यातायात के नियमों का उल्लंघन करना, सार्वजनिक स्थलों पर गंदगी फैलाना, अपने माता-पिता व स्वयं से बड़ो का आदर न करना या सार्वजनिक वाहनों जैसे – बस, मेट्रो रेल आदि में आरक्षित सीटों का दुरुपयोग करना कुछ ऐसे उदाहरण हैं जो मनुष्य के जीवन में अनुशासनहीनता का प्रमाण देते हैं । इस संबंध में अनुशासन का पालन

तब तक संपूर्ण रूप में अपनाया नहीं जा सकता जब तक हम स्वयं उसे स्वीकार करने की ओर अग्रसर न हो। हम कानूनों व नियमों का पालन करने का दिखावा कुछ देर दबाब के कारण तो कर सकते हैं किंतु इसे पूर्ण रूप में अनुशासन के पालन से जोड़ा नहीं जा सकता। अनुशासन का पालन करने की चाहत किसी व्यक्ति में स्वयं की इच्छा से पैदा होनी चाहिये। यदि हम स्वेच्छा से अनुशासन का पालन करेंगे अर्थात् स्वतः अनुशासन को अपनायेंगे तभी सच्चे अर्थ में अनुशासन पालन की प्रक्रिया अपना वास्तविक उद्देश्य प्राप्त कर सकेगी। अंत में—

“ कौन कहता है कि आसमाँ में छेद नहीं होता, होता तो है, पर एक पत्थर तबीयत से तो उछालो यारों।”

अवतार सिंह

स्वयं से स्वयं की पहचान

जान तू पहचान तू कि

है कौन तू

जान तू पहचान तू कि

है कौन तेरा

कब से कब तक

जाएगा यूँ ही

बहता तू

कर ले दो—चार बात तू

दे कुछ चार बात तू

जो करता है तेरा इंतज़ार खूब

करके देख भरोसा एक बार तू

न जानता, न मानता तू किसी की

पर एक बार कर ऐतबार तू

कौन है तेरा, किसका है तू

क्या है, एक सच या है पहेली ये

पूछ तू, समझ तू

तू वहीं तो दुनिया नहीं

तू है अहम, तू है अद्भुत

न भूल तू, न भूल तू

हो जाएगा ये समय पार

हो जाएगा तू किसका

खो जाएगा अपने आपको

दफ़न हो जाएगा 'तू'

रह जाएगी सिर्फ 'वो'

भर ले एक बार फिर 'हुंकार' तू

ठान ले एक बार तू

करने को जो चाहे तू

न सोच, न समझ, न जान

न मान, न डर इस समाज से

कर एक बार हिम्मत अपने आप तू

तुझमें ही तो है तू

तू नहीं है अलग अपने आप से

ये मान तू, ये जान तू

कर हौंसला, भर ताकत एक बार

भर ले एक बार उड़ान

कर ले कब्ज़ा इस आकाश पे

चूम ले तू चाँद को

न कम आँक तू

तू है अनजान

तू है नासमझ

समझ ले तू अपने 'आपको'

देगा साथ तू

देगा साथ तू

है भरोसा तुझ पर

हिम्मत है, हौंसला है

तू है मेरा, सिर्फ मेरा...

गुलशन कुमार

असफलता सफलता की कुंजी है

दुनिया में कोई ऐसा व्यक्ति नहीं है जिसने जीवन में असफलता का सामना न किया हो। जब भी हम जीवन में सुखद दिनों की कल्पना करते हैं, तो दुखद दिन भी उसमें स्वतः ही जुड़ने के लिए बाध्य हो जाते हैं। नेपोलियन ने कहा था कि असफलता नाम का कोई शब्द मेरे शब्दकोश में नहीं है। वास्तव में हमने बहुत से व्यक्तियों के बारे में सुना है जिन्होंने असफलता का स्वाद चखा है किन्तु उन्होंने जीवन में असफलता को कोई स्थान नहीं दिया। जैसे अब्राहम लिंकन, नेल्सन मंडेला आदि। इन दोनों ने ही अपने जीवन में अनेकों बार असफलता का सामना किया। लेकिन इन्होंने हार नहीं मानी। इनमें से अब्राहम लिंकन जो अमेरिका के प्रथम राष्ट्रपति बने, वहीं दूसरी ओर नेल्सन मंडेला ने दक्षिण अफ्रीका की बागडोर संभाली। इस तरह के अनेकों उदाहरणों से हमें यह ज्ञात होता है कि इन लोगों ने अपने मन से असफलता को उसी तरह से हटा दिया जैसे कपड़ों से धूल हटा दी जाती है। उन्होंने अपने जीवन में कठिनाइयों को एक चुनौती के रूप में स्वीकार किया। असफलता से उन्हें प्रेरणा मिली और वे एक नई शक्ति एवं विश्वास के साथ आगे बढ़े।

कहते हैं कि न गिरने वालों से गिरकर उठने वाला श्रेष्ठ होता है क्योंकि वह गहराइयों को जान चुका होता है। अर्थात् हमारी असफलताएँ हमको उठकर, खड़े होकर जीवन में आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करती है। आपने कभी छोटे बच्चे को देखा हो जो अभी चलना ही सीख रहा होता है। वह चलते हुए बार-बार गिरता है, फिर उठता है और पुनः जोश के साथ आगे बढ़ता है। वह छोटा बच्चा अपनी असफलताओं से हार नहीं मानता है, अपितु उसे चुनौती के रूप में स्वीकार कर, आगे बढ़ता है।

क्या आपने कभी एक छोटी सी चींटी को कभी खाली, तो कभी अपने से ज़्यादा वज़न के साथ दीवार पर चढ़ने की कोशिश करते देखा है? हालांकि वह चुनौती के साथ दीवार पर चढ़ती है, लेकिन एक छोटी सी उँचाई पर पहुँचने के उपरांत वह नीचे गिर जाती है लेकिन उसे निराशा नहीं होती वह अपनी असफलता पर अपमानित महसूस नहीं करती, बल्कि वह निरंतर प्रयास करती रहती है और अंत में उस दीवार की उँचाई भी उसके दृढ़ संकल्प और विश्वास के आगे झुक जाती है। वास्तव में असफलताओं का सामना करके ही उस पर सफलता हासिल की जा सकती है।

प्रो. हॉकिन्स ने कहा है कि हमें असफलताओं को देखकर निराश नहीं होना चाहिए। अगर हम जीवन के सुखद और दुखद क्षणों में एक समान रहते हैं, लाभ-हानि, जीत-हार, फ़ायदे-नुकसान की परवाह नहीं करते और निरंतर अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए कठोर संघर्ष करते रहते हैं तो हमारे जीवन में कभी भी रुकावट नहीं आती। ऐसा करने से कभी जीवन में असफलता का सामना नहीं करना पड़ता। जैसे आपने मोहम्मद गजनवी के बारे में ज़रूर पढ़ा होगा जिसने गुजरात के प्रसिद्ध सोमनाथ मंदिर को लूटा था। उसने भी भारत पर सोलह बार आक्रमण किया था और हर बार वह असफल रहा परंतु उसने हार नहीं मानी और सतरहवीं बार में सफलता प्राप्त की।

भगवद् गीता में अर्जुन को उपदेश देते हुए श्री कृष्ण ने कहा है— “व्यक्ति स्वयं अपने आप का मित्र और शत्रु है। असफलता दुःख का वास्तविक कारण नहीं है बल्कि हमारे दुख भरे जीवन का वास्तविक व मुख्य कारण अपने आप की दूसरों से तुलना करना है। हमें तुलना के स्थान पर दूसरों से सीख लेनी चाहिए, उनसे प्रेरणा लेनी चाहिए और फिर अपनी कामयाबी के पथ पर अग्रसर होना चाहिए। मैं मानती हूँ कि इस दुनिया में किसी भी गतिविधि, चाहे वह खेल-कूद हो या पढ़ाई या नृत्य हो या संगीत या कुछ और, उसमें जो द्वितीय स्थान प्राप्त करता है, वो इस दुनिया में सबसे ज़्यादा सीखना चाहने वाला और प्रेरणा लेने वाला व्यक्ति होता है। किसी ने ठीक ही कहा है—

“माना कि अंधेरा घना है,
पर दीया जलाना भी कहाँ मना है।”

यदि व्यक्ति किसी भी लक्ष्य को पाने की इच्छा करता है और उसके अनुरूप कर्म करता है तो उसे उसके अनुरूप ही फल मिलता है। उपयुक्त पंक्ति की मैं एक यथार्थ उदाहरण के माध्यम से पुष्टि करना चाहूँगी। मैं एक मैगजीन में एक I.A.S अधिकारी का साक्षात्कार पढ़ रही थी। वह अधिकारी एक रिक्शा चालक का बेटा था अर्थात् उसने बहुत अधिक विषम परिस्थितियों में अपना अध्ययन कार्य किया था। उनसे जब ये प्रश्न पूछा गया था कि इतनी विषम परिस्थितियों और असफलताओं के बाद भी आपको I.A.S बनने की प्रेरणा कैसे मिली। उस अधिकारी ने बहुत ही खूबसूरत जवाब दिया। उन्होंने कहा—

“मेरे सामने दो ही चीज़ थीं। या तो ये रिक्शा चलाना है, या देश चलाना है।”

अर्थात् उन्होंने अपनी किस्मत को नहीं कोसा और अपने कर्म पर विश्वास किया और अंततः सफलता भी प्राप्त की। जीवन सुख-दुख का मिश्रण है, दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। यदि जीवन में दुख आता है, तो उसके साथ सुख भी आता है, निराशा है, तो आशा भी, असफलता है, तो सफलता भी, ज़रूरत है तो बस विश्वास की। विश्वास खुद पर और अपने खुदा पर।

When everything is going dark and dim in Your life,
Don't Worry Because
Good is actually Switching off the light
Before throwing a surprise party

इसलिए असफलताओं से निराश मत होइये और उन्हे अपनी ताकत बनाइये। वास्तव में असफलता, विषम परिस्थितियाँ व्यक्ति के मूल्यांकन में सहायक हैं। जीवन में बिना चुनौती का सामना किए हम कभी भी सफलता अर्जित नहीं कर सकते। स्वामी विवेकानंद ने कहा था कि आप जिस मार्ग पर चल रहे हैं, अगर उस मार्ग पर आपके सामने कोई चुनौती न हों, तो इसका अर्थ यह है कि आप गलत मार्ग पर चल रहे हैं।

चाहे कोई भी समस्या कितनी भी कठिन हो लेकिन वह आपके दृढ़ संकल्प के सामने हमेशा छोटी होनी चाहिए। किसी भी घटना के लिए अपने को या दूसरे को दोषी ठहराने के स्थान पर उस समस्या का समाधान करना चाहिए। ऐसा करने से ही हम जीवन में सफलता प्राप्त कर सकते हैं। असफलताएँ या गलतियाँ अनुभव को बढ़ाती हैं और अनुभव गलतियों एवं असफलताओं को हटाता है। अंत में —

असफलता ही चुनौती है,
उसको स्वीकार करो,
ढूँढ़ निकालो सब कमियाँ,
फिर उनमें सुधार करो।

निकिता गोयल

सोच से संभावनाओं तक का सफ़र हौंसलों से होकर गुज़रता है।

दायित्व बोध

शहरों को बहुत संवारा, आओ गाँवों का भी उत्थान करें।
छूट गये जो विकास की दौड़ में पीछे, उन परिवारों का भी अब सम्मान करें।

गाँवों की प्रतिभा को भी सँवार कर,
देश की प्रगति में हम अपना अहम योगदान करें।
बहुत दिया गाँवों ने हमको,
आओ गाँवों को भी कुछ दान करें।

धरती का हृदय चीर, कठिन परिश्रम से जो अन्न उपजाते हैं।
आज भी वो गाँवों में भूखे, खुले आकाश के नीचे सो जाते हैं।

गाँवों ने जो अन्न खिलाया, प्यार दिया,
क्यों भूल गये जो गाँवों ने संस्कार दिया !
खुद भूखे रह औरों को खिलाते हैं,
देश और समाज के लिए अपना सर्वस्व लुटाते हैं।

जहाँ प्रकृति और शांति का सानिध्य है होता।
फिर क्यों गाँवों का जन जन है रोता?

आओ उनके दुःखों को दूर करने का दायित्व अब स्वीकार करें,
सबके हृदय में खुशियों का नवसंचार करें।
अपनों को अपनों से जोड़ नवभारत निर्माण करें,
देश की प्रगति में आओ हम अपना अहम योगदान करें।

जयनाथ चौधरी



तुमने कभी सोचा ही नहीं...

तुम हालात बदल सकते थे
हम साथ भी चल सकते थे
पर तुमने कभी सोचा ही नहीं ।

तुमने मुझको समझा अजनबी
प्यार से देखा नहीं कभी
अरमान मचल सकते थे
तुमने कभी सोचा ही नहीं ।

मैं हूँ बादल सा आवारा
तुम चाँद और सितारा
दिन-रात निकल सकते थे
तुमने कभी सोचा ही नहीं ।

तुम होते मेरे अगर
आसान हो जाता सफ़र
साथ-साथ चल सकते थे
तुमने कभी सोचा ही नहीं ।

तुम्हारी क्या मजबूरियाँ थीं
मुझसे क्यों दूरियाँ थीं
पत्थर दिल भी पिघल सकते थे
तुमने कभी सोचा ही नहीं ।

मैं हूँ एक मुसलमान
तुम हो गैर मुसलमान
इंसान होकर चल सकते थे
तुमने कभी सोचा ही नहीं ।

मो० अफ़ाक

बाल-विवाह

गुड्डे और गुड़ियों का
ब्याह जो रचाती है
अगले ही पल वह
खुद दुल्हन बन जाती है ।

जो पिता नहीं कह सकती
वह पत्नी क्या कहलाएगी
जो दूध अभी पीती है
वह दूध क्या पिलाएगी ।

नाम तो दिया है तुमने
इसको कन्यादान का
और दान दे दिया
एक कन्या की जान का ।

सुमित कुमार



आज़ाद हूँ, आज़ाद हूँ...

थोड़ी थिरकन, थोड़ी अदा
थोड़ी लाज और थोड़ी हया
गहनें तेरे हैं ये सभी ...
इनको अपनी पहचान बना ।

पढ़ने का शौक तू छोड़ दे...
खेलना मत सोचना ।
हँसना नहीं यूँ खुलकर तू
आवाज़ को थोड़ा दबा...

ये गहनें ले, ये ज़ेवर ले...
यही तो तेरा शौक है...
तू ममता का संसार है...
चूल्हे चौके का जोग है ।

पिता करे तो कुछ नहीं...
भाई करे तो कुछ नहीं...
पर तूने जो कुछ कर दिया...
ये नाक हमारी कट गई ।

तू आन है , तू शान है...
तू ही मेरा सम्मान है...
इन लोगों में, समाज में...
तू ही मेरी पहचान है...
तू बेटी है, तू इज्जत है ।

तू मर्द है, तू मर्द है,
तुझको नहीं कोई दर्द है
तू मर्द है , तू मर्द है ।
सीना तना, आवाज़ बुलंद

मज़बूत ये तेरी बाहें हो...
एक रौब हो , रूआब हो...
तेरी चाल का ये हाल हो...
रोना नहीं, रोना नहीं...

आँसू औरत की निशानी है...
तू रक्षक है हर अबला का
मर्दों की यही जवानी है ।

तू घर में दाना लाएगा,
ये जीवन सफल बनाएगा...
हर ख्वाहिश को मेरी तू
पूरी करके दिखलाएगा ।

धन बरसाए, धन बरसाए
घरोंदें को तू चमकाए
मेरे लिए गहना तू बनवाए
नाम भी रोशन करवाए ।

पर इस युवा हृदय से एक ही आवाज़ निकलती है...

जीना है भई, जीना है
खुलकर हमको जीना है ...
जीना है भई जीना है ।

कुछ ख्वाब हैं, अरमान हैं
ये साँस हैं, ये जहान है ।
जी लूँ ज़रा, जी लूँ ज़रा
मुझे पानी एक पहचान है ।

इस मौसम में, ज़रा झूम लूँ
ख्वाबों को अपने चूम लूँ ।
बढ़ जाऊँ मैं उस ओर जहाँ,
आज़ाद हूँ हर डोर से
आज़ाद हूँ हर डोर से.....

इस रूढ़ि से आज़ाद हूँ ।
इस सोच से आज़ाद हूँ ।
इस बोझ से आज़ाद हूँ ।
इस दर्द से आज़ाद हूँ ।
आज़ाद हूँ, आज़ाद हूँ...

आराधना भारद्वाज

मानव अधिकार और विद्यालयी शिक्षा

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) में विद्यालयों के राष्ट्रीय पाठ्यक्रम के अन्तर्गत, 'सामान्य कोर' पर बल दिया गया जिसमें प्रत्येक चरण पर मानव अधिकार शिक्षा को पाठ्यक्रम का भिन्न अंग बनाकर मानव अधिकारों को और परिपुष्ट किया गया है। नीति में निहित अधिकांश 'सामान्य कोर' तत्व मानव अधिकार और लोकतंत्र के विभिन्न आयामों से सम्बन्धित है। 1990 में 'प्रबुद्ध और मानवीय समाज की ओर' दस्तावेज़ के नाम से राष्ट्रीय शिक्षा नीति पर पुनर्विचार किया गया तो एक कदम और आगे बढ़ते हुए यह स्वीकार किया कि सामाजिक और आर्थिक विकास की दिशा में किये गए प्रयासों के बावजूद हमारे देश के अधिकांश लोग शिक्षा से वंचित हैं। सरकार दो रूपों में — 'मानव अधिकार' के रूप में तथा अधिक मानवीय और प्रबुद्ध समाज की ओर अग्रसर होने के माध्यम के रूप में शिक्षा को सर्वोच्च प्राथमिकता देती है। मानव-अधिकार के रूप में शिक्षा के कार्य को तथा उन्मुख बनाने के लिए अनेक प्रकार की संकीर्णताओं से ऊपर उठाना महत्त्वपूर्ण समझा गया। आज आवश्यकता है कि शिक्षा के माध्यम से समाज में फैले जातिवाद, साम्प्रदायिकता तथा रुढ़िवाद जैसे अवरोधक तत्त्वों के प्रति संघर्ष पैदा किया जाये। इसके साथ ही शिक्षा में फैली उस अभिजातीय विकृति को समाप्त करना है जो समाज के समान विकास में कोर अवरोधक बन चुकी है। कुल मिलाकर 'सर्वधर्म समभाव' सभी के बीच समानत शिक्षा के अनेक राष्ट्रीय मूल्यों में से प्रमुख होगी। शिक्षा में समानता के उद्देश्य के लिए दस्तावेज़ में स्पष्ट किया है कि इस दिशा में सभी को शिक्षा के समान अवसर उपलब्ध कराना ही पर्याप्त नहीं होगा। ऐसी व्यवस्था करना भी आवश्यक है जिसमें सभी को शिक्षा में सफलता प्राप्त करने के समान अवसर मिलें।

वास्तव में राष्ट्रीय शिक्षा व्यवस्था का यह उद्देश्य है कि रुढ़िवाद, धार्मिक कट्टरता, हिंसा, अंधविश्वास और भाग्यवाद के उन्मूलन के लिए शिक्षा की संघर्षपूर्ण भूमिका पर बल देना। दस्तावेज़ में समानता की शिक्षा, महिलाओं की समानता के लिये शिक्षा के विभिन्न उपायों, अनुसूचित जनजाति तथा शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े वर्गों और क्षेत्रों, अल्पसंख्यकों और विकलांगों के बारे में भी दिया गया है। दस्तावेज़ में मानव अधिकारों के पोषण के लिए उससे जुड़े अनेक तत्त्व संवैधानिक जिम्मेदारियाँ राष्ट्रीय अस्मिता से जुड़े अनेक संदर्भों, पाठ्यपुस्तकों तथा अन्य शैक्षिक क्रियाकलापों एवं कार्यक्रमों में प्रतिबिम्बित किये जाने की आवश्यकता एवं सिफारिश की गई। इस सम्बन्ध में कहा गया कि ये तत्त्व किसी एक विषय का हिस्सा न बनकर लगभग सभी विषयों में परोये जाएं ताकि ऐसे मूल्य अपनी पूरी समग्रता के साथ शिक्षा का अंग बन सकें। पाठ्यपुस्तकों में इस दिशा में प्रयास दिखता है। यदि विभिन्न विषयों की पुस्तकों को गौर से देखा जाये तो विद्यालयी स्तर पर जो विभिन्न विषयों के इस समय पाठ्यक्रम या पाठ्यपुस्तकें तैयार की गई हैं उनका समय-समय पर परिष्कार किया जा रहा है। उनमें मानव-अधिकारों सम्बन्धी मुख्य तत्त्व दिखते हैं।

इसके अतिरिक्त एक अन्य तत्त्व पर दस्तावेज़ में उल्लेख है और वह तत्त्व वर्तमान विद्यालयी शिक्षा के विश्लेषण के लिए निश्चय ही चिंतनीय होगा। दस्तावेज़ में लिखा है कि शिक्षा में समानता के उद्देश्य के लिये सभी को शिक्षा के समान अवसर उपलब्ध कराना ही पर्याप्त नहीं होगा बल्कि शिक्षा की ऐसी व्यवस्था और उसका ऐसा विधान तैयार करना आवश्यक है जिसमें सभी को शिक्षा में सफलता प्राप्त करने के समान अवसर मिलें। विद्यालयों में दी जाने वाली शिक्षा का विश्लेषण किये बिना हम शिक्षा के माध्यम से मानव अधिकारों की पुष्टि होने की बात पूर्णतः नहीं कर सकेंगे।

हम देखते हैं कि विद्यालयों में दी जानेवाली शिक्षा अनेक महान तत्त्वों को समेटने के बाद भी अपने मूल उद्देश्य परीक्षा में पास-फेल होने तक ही सिमट कर रह गई है। इस शिक्षा व्यवस्था में करोड़ों बच्चों की अस्मिता कुचल जाती है। अनुत्तीर्ण होने वाले बच्चों को किसी के लायक नहीं माना जाता तो फिर शिक्षा के माध्यम से मानव अधिकार की दुहाई देना क्या मात्र दिखावा नहीं लगता! समानता तथा सामाजिक न्याय की दृष्टि से परीक्षा प्रणाली

में सुधार करने का औचित्य स्वयं विविध समय में बनी शिक्षा की नीतियाँ भी स्वीकारती आई है। 1990 में बनी राष्ट्रीय शिक्षा नीति (पृष्ठ 15) पर स्पष्ट लिखा है, 'आज की परीक्षा प्रणाली उन सम्पन्न लोगों के पक्ष में ज़्यादा है जिन्हें विशेष कोचिंग की सुविधाएँ होती हैं। इस असमानता को दूर करने के लिये परीक्षा प्रणाली में सुधार आवश्यक है। वस्तुतः आवश्यकता केवल परीक्षा प्रणाली में सुधार की नहीं विद्यालयों के कक्षाओं में जिस प्रकार की शिक्षा का पूरा विधान लागू है वह स्वयं बालक के मानव अधिकार को पोषित नहीं करता। आज का छात्र जिस प्रकार की कुंजियों, गाइडों व सहायक पुस्तकों पर निर्भर रहने लगा है उसका विश्लेषण निश्चय ही आवश्यक है। कक्षा में रटे-रटाये उत्तर (मूलतः कुंजियों व गाइडों पर आधारित) पढ़ाये जाते हैं तो प्रश्न उठता है कि बच्चों का निजी पनपना, अभिव्यक्ति और विचारों को पोषण करने की शिक्षा कहाँ दी जाती है! शिक्षा-विभाग की तरफ़ से ऐसी पुस्तकों पर पूर्णतः प्रतिबन्ध नहीं लगाना चाहिए। कितनी विडम्बना है कि आज पूरी स्कूली शिक्षा में गाइडों, विभिन्न सहायक पुस्तकें प्रमुख होती गई हैं ! अभी एन.सी.ई.आर.टी. की पुस्तकें जो प्रमुख होनी चाहिए वे नगण्य हैं। एन.सी.ई.आर.टी. द्वारा प्रस्तावित एक विस्तृत पाठ्यक्रम के बावजूद भी कक्षा में पढ़ाई के ध्यान में इस प्रकार के अभिलक्षण स्वयं मानव संसाधन के विकास के अवरोधक तत्त्व नहीं हैं।

सत्र के आरंभ होते ही छात्र व अध्यापक आसान रास्ता ढूँढ़ने में लग जाते हैं और पुस्तक विक्रेता के क्रियाकलापों का इन्तज़ार शुरू हो जाता है। सच तो यह है कि प्रधानाचार्य इस ओर कोई ध्यान देना उचित नहीं समझते। वे और शिक्षा निदेशालय बोर्ड परीक्षा परिणाम में बढ़ोतरी हर हाल में देखना चाहते हैं अध्यापक व छात्रों के बीच आसान तरीके से पढ़ाने और समझाने का समझौता हो जाता है। विषयों में निहित मूल्यों व उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए प्रयास न के बराबर होते हैं।

शिक्षण जागरूकता बढ़ाने, अधिक खुलापन, प्रश्न पूछने की क्षमता, साहस और समाधान की तलाश में दृढ़ता का कार्य प्रशस्त करता है। कक्षा में पढ़ाई करवाने का विधान छात्र के प्रभावशाली तथा सृजनात्मक ढंग से जीवन के कई कार्यों तथा चुनौतियों का सामना करने के लिए तैयार करना है। जो उन्हें रचनात्मक नव परिवर्तन के लिये तैयार करे और उनकी शक्ति का विकास कर सके।

भारत का भविष्य स्कूलों की कक्षाओं में बुना जा रहा है। यदि शिक्षण-प्रशिक्षण का कार्य एक सीमित फेरेबन्दी में सिमटकर होगा तो निश्चय ही भविष्य में छात्र विभिन्न तकनीकी द्वारा उपयोग कार्य तो करने में सक्षम हो सकेंगे पर वे कोई नई तकनीक का विकास नहीं कर सकेंगे।

डॉ. सतवीर सिंह बरवाल
(MVCE Faculty)



मेरा अस्तित्व

कुछ जुड़ी हुई हूँ खाबों से
 कुछ टूटी हूँ सच्चाई से,
 कुछ लम्हों में सिमटी हुई,
 बस खोई हूँ इन राहों में,
 वक्त की गुज़रती लहरों में
 बिना डोर के बहती हुई
 कल के भरे जज़्बातों से
 कुछ आज के पन्ने खाली हैं।
 मैं उलझी हूँ कुछ सवालों में
 मैं खोई हूँ कुछ राहों में
 डरती हूँ अब खाबों से,
 लड़ती हूँ हर पल खुद से
 न कल से जुड़ी हूँ, न आज से
 बस खोई हूँ इन राहों में
 लम्हें ढूँढती हूँ ज़िन्दगी को
 जीने के लिए
 मैं कल में बस एक पन्ना थी
 आज भी छूटा किस्सा हूँ
 मैं कल तुम्हारा आगाज़ थी
 पर आज तुम्हारी कुछ भी नहीं
 तुम्हारी उलझनों में मैं खुद को ढूँढ लेती थी
 आज मैं खुद ही उलझी हूँ
 वक्त तो एक ज़रिया है
 मैं फिर से लौट कर आऊँगी
 मैं कल भी तुम्हारा हिस्सा थी और अब भी हूँ
 ये तुमको याद दिलाऊँगी

आयूषी त्यागी

वो

शहर—‘दिल्ली’। ऊँची—नीची इमारतें, चौड़ी—संकरी सड़कें, आलिशान बंगले—तंग बस्तियाँ, बड़े मॉल—मुनीम की दुकान, यहाँ यह सब है जो आप देखना चाहते हैं। यहाँ एक कार में केवल एक व्यक्ति और एक बस में एक पर एक व्यक्ति आसानी से देखे जा सकते हैं। यदि आप नाव चलाने या तैराकी का शौक फरमाते हैं तो बस इंतज़ार कीजिए मॉनसून का। दिल्ली की सड़कों पर आपकी यह ख्वाहिश भी पूरी हो जाएगी। यदि आप खुद को बड़ा स्पोर्ट्समैन समझते हैं और अपने दम पर खेल बदलने का दमखम रखते हैं तो जाइये, दो दिन से प्यासी बस्ती में आए पहले टैंकर से पंद्रह मिनट में बोटल भर कर दिखाइये। हाल तो सफलता की संभावना नहीं, फिर भी अगर सफल हो गए तो हालत यह होगी कि अगले ही पल पानी अंदर और बोटल फिर से खाली। सुबह का प्याला हाथ में लिए, खिड़की पर जमे कोहरे से धुंधले हुए शीशे पर यह सभी चित्र एक—एक कर किशोर की आँखों के सामने आते और ओझल हो जाते। किशोर बैंक में अच्छे पद पर कार्यरत था और दिल्ली में तबादला हुए अभी दो वर्ष भी पूरे नहीं हुए थे।

खिड़की के ठीक सामने विशाल पुल सीना फैलाए खड़ा था। उसके ऊपर से हज़ारों वाहन रोज़ गुज़रते थे और नीचे अक्सर जाम लगा रहता था। अंधेरा होते—होते नीचे भी वाहन फर्टाटा भरते नज़र आते थे। इसी पुल के नीचे किशोर की खिड़की के ठीक सामने वाले खम्भे के पास ‘वो’ रहता था। इकहरा बदन, कुँए—सी गहरी आँखें, सिर पर उलझे बालों का भद्दा—सा गुच्छा, चेहरा मटमैली, दाढ़ी से ढका। शरीर पर कपड़ों के नाम पर एक कुर्ता और पजामा। जो अपने असली रंग को बहुत पहले खो चुका था। कुर्ते के ऊपर एक अधजला स्वेटर। पैरों में जूते तो थे लेकिन उनसे अंगूठे झांकते रहते थे। एक जूते में फीता था जबकि दूसरा फीता पजामे को बांधने के काम आता था। उसका नाम रहस्य ही रहा। कभी किसी अपने ने उसे पुकारा ही नहीं और उसका जो अपना था वो कभी उसे पुकार नहीं सका लेकिन ‘वो’ उसे सिकंदर कहकर पुकारा था। सिकंदर एक आवारा कुत्ता था। अपनी मर्जी का मालिक, ठीक किसी बादशाह की तरह बेफ़िक्र।

पुण्य के नाम पर मोक्ष के लालची लोग गाड़ियों से उतर सिकंदर को तो दूध, ब्रैड और बिस्कुट खिलाते पर शायद ही कभी कोई, उसको कुछ देता। गाड़ी चली जाने के बाद वह दोनों उस भोजन को सांझा कर लेते थे। सिकंदर को इस पर कोई आपत्ति नहीं थी।

दिसम्बर की सर्दी अपना प्रकोप दिखाने लगी थी। कई दिनों से सूर्यदेव भी अंतर्धान थे। सर्द हवाएं तन ही नहीं रूह तक को कंपा रही थीं। किशोर आराम—कुर्सी पर बैठे टी.वी. पर खबरें देख रहे थे। कुछ देर बाद कुर्सी को हीटर के पास रखते हुए चिंता की मुद्रा में बोले—‘सरकार करोड़ों रुपयों का कर वसूलती है लेकिन बेघर लोगों के लिए सर्दी में रहने की उचित व्यवस्था नहीं करती। विकास के नाम पर सड़कों पर पुल खींच उाले, आलीशान मॉल बनवा दिए, मनोरंजन के नाम पर कई महंगे स्थल बनवा दिए लेकिन आज भी बेघर मासूम लोग अपनी जान गंवा रहे हैं। कीड़े पड़ने चाहिए ऐसी नालायक सरकार चलाने वाले मंत्रियों के शरीर में। ज़रा भी इंसानियत नहीं।

‘अरे...अरे...बस...शांत, ख्वामखाह अपना खून क्यों जला रहे हो? सबकी अपनी—अपनी किस्मत होती है।’ सुनीता ने हल्की सी मुस्कान के साथ कहा।

‘लेकिन एक ज़िम्मेदार नागरिक होने के नाते...’

‘हाँ...हाँ...पता है। ... मेरा भी कर्तव्य बनता है कि जरूरतमंदों की सहायता करूं। पत्नी ने सुबह से व्रत रखा हुआ है, उसकी परवाह तो है नहीं। आए बड़े...देश के ज़िम्मेदार नागरिक।’

‘ओह... मैं तो भूल ही गया। जल्दी बोलो क्या लाऊं?’

‘दो तरह के फल ले आना और कोई भी मिठाई ले आना अपनी पसंदीदा।’

किशोर बाबू गाड़ी लेकर बाज़ार की तरफ़ गए। अंधेरा होने लगा था। सड़क की लाईटें जल चुकी थीं। पुल के नीचे वाहनों की गति बढ़ने लगी थी। 'वो' सीमा पर तैनात किसी सिपाही की-सी फूर्ती से कागज, लकड़ियाँ आदि जलावन ढूँढ रहा था और सिकंदर उसके पीछे-पीछे दुम हिलाता घूमता रहा था। कुछ देर की मेहनत के बाद जलावन का ढेर बना लिया गया। अगली चुनौती थी उसे जलाने की। 'वो' उठा और कूड़े के ढेर में माचिस खोजने लगा। उसका हाथ ठिठुर रहा था, कंपकंपी छूटने लगी थी। सारा कूड़ा छान लेने के बाद 'वो' दोनों हाथों को बगल में दबाए सड़क किनारे ढूँढने लगा। एक अधजली सिगरेट उसके पास आकर गिरी। वह दौड़ा और झट से उठाकर उसे जलाए रखने के लिए दम खींचने लगा।

किशोर बाज़ार से लौटा तो उन दोनों को आग के सामने बैठा देख मन ही मन बोला—'कितना सुकून मिलता है आग के सामने बैठ हाथ सेंकने में। काश मैं भी...।' और गाड़ी घर में दाखिल हो गई।

अगली सुबह, किशोर चेहरे को हथेली पर टिकाए कोहरे से ढंके खिड़की के शीशे पर अपने परिवार को फलता-फूलता देख रहा था और भविष्य की योजनाएं बना रहा था कि परिवार बढ़ेगा तो बड़ा घर और बड़ी गाड़ी चाहिए होगी। अचानक नज़र खिड़की से हट दूसरे हाथ पर जो पड़ी तो चाय की याद आई। 'आज चाय नहीं मिलेगी क्या?'

किचन से आवाज़ आई—'दूध लाकर दो पहले।'

'इतनी ठण्ड में?'

'चाय पीनी है तो जाना तो पड़ेगा।'

अनमने से मन से किशोर बाबू उठे। ओवर कोट पहना, पैरों में बूट डाले, सिर पर टोपी और हाथों में दस्ताने पहन चल दिए। घर से बाहर निकले तो नज़ारा ही दूसरा था। भीड़ जमा थी, सड़क किनारे पुलिस की गाड़ी सायरन दे रही थी, आती-जाती गाड़ियाँ धीमी होती और तेज़ी से निकल जाती।

किशोर बाबू अपने चौकीदार के पास गए और पूछा—'इतनी भीड़ क्यों लगी है? एक्सीडेंट हुआ है क्या?'

'नहीं सर, वो मर गया।'

'वो कौन?'

'सर 'वो', जो पुल के नीचे रहता था। कुत्ते के साथ अक्सर बैठा देखा होगा आपने।'

'हाँ...हाँ...! कल शाम ही तो देखा था मैंने उसे। आग जलाए बैठा हुआ था।'

'हाँ सर! वही।'

'क्या कोई बीमारी थी?' किशोर ने आश्चर्य से पूछा।

'बीमारी... हाँ सर, गरीबी की बीमारी थी। ना खाने का अता था न घर का पता। उसके पास कुछ नहीं था। ओढ़ने के नाम पर ये पुल था और बिछाने के लिए ज़मीन। मैंने उसे अपना पुराना कम्बल लाकर दिया था। कुछ दिनों बाद वह भी कहीं गायब हो गया। रात को सर्द हवाओं से बचाव के लिए प्लास्टिक से बने नेताओं के बैनरों को लपेटे रहता था। कई बार तो सिकंदर को सीने से चिपकाए लेटा रहता था। मैंने खुद अपनी आँखों से देखा है।'

किशोर को उनके पैर अनायास ही भीड़ की ओर खींच कर ले गए। पुल के नीचे, खम्भे के पास, बैनरों में लिपटा, घुटने पेट में गड़ाए 'वो' मरा पड़ा था लेकिन बैनर पर छपा राजनेता अब भी मुस्कुरा रहा था। किशोर से और नहीं देखा गया। वह वापस आने के लिए पलटे तो सामने उसे वही खिड़की नज़र आई जिस पर अक्सर किशोर बाबू काल्पनिक चलचित्र (फिल्म) देखा करते थे। किशोर बाबू बिना दूध लिए ही घर लौट आए। आईने के पास से गुज़रते

हुए आईने के सामने ठहर गए। खुद को नीचे से ऊपर तक निहारा किंतु अपनी ही आंखों में आंखें डालने की हिम्मत नहीं जुटा पाए। कुछ देर निर्जीव से वहीं खड़े रहे, फिर खिड़की की तरफ बढ़े। खिड़की का शीशा अभी भी कोहरे से ढका था। किशोर बाबू ने खिड़की खोल दी। बाहर का दृश्य बिल्कुल साफ़ था।

खिड़की के खुलने की आवाज़ सुन सुनीता हाथ साफ़ करते हुए किचन से बाहर निकली और खिड़की खुली देखकर बोली 'अरे...इतनी जल्दी खोल दी?'

क्षणभर बाद आवाज़ आई—'काश...जल्दी खोली होती!'

विजय कुमार

कल, आज और कल

मेरा ख्याल है कि मैं सही आदमी के पास पहुँची हूँ। सफ़ेद नस्ल शारलेट ने कहा।

"मैं कुछ नहीं समझा" काले रंग के विक्टर ज्वायस ने हैरत से जवाब दिया।

शारलेट ने एक पहचान कार्ड उस की तरफ़ बढ़ाया और कहा "ये कार्ड आप कभी मेरे वालिद के पास छोड़ आए थे।"

मैं समझ नहीं सका भोली— लड़की।

"आज से सोलह साल पहले 22 नवम्बर की वो यादगार शाम क्या आप भूल गये? मेरे लिए तो वह तारीखी हैसियत रखती है। सर्कुलर रोड पर उस बूढ़े यूकेलिप्टस के पीछे वह कॉटेज आप को जरूर याद होगा, जिसे जलता देख कर आप ने अपनी कार रोक ली थी और पड़ोसियों के हुजूम को चीरते हुए आग के शोलों में कूद पड़े थे। डैडी बाहर गये थे, मेरी माँ शोलों की लपेट में आ चुकी थी। वह मुझे अपनी गोद से अलग करने की हर तरह से कोशिश कर रही थी, इस कोशिश में आप भी जल गये थे लेकिन आप ने मुझे बचा लिया था। मेरी माँ नहीं बच सकी और कुछ ही दिनों बाद अल्लाह को प्यारी हो गयी थी। वह आप की इतनी एहसानमंद थी कि आखिरी वक़्त तक आप का ही नाम लेती रही। इस की रिकार्ड की हुई वसीयत मेरा कीमती सरमाया ही नहीं बल्कि मेरी ज़िन्दगी का मक़सद भी है, और यही चीज़ मुझे आप तक लाई है।" शारलेट ने एक ठंडी आह भरते हुए अपनी बात ख़त्म की।

"मुझे बहुत सदमा हुआ, तुम्हारी माँ ना बच सकी, काश मैं कुछ और पहले पहुँचा होता"। तो वह नन्ही बच्ची तुम ही हो...? विक्टर ज्वायस ने हैरत से पूछा।

"जी हाँ वह बदनसीब मैं ही हूँ"। मैं वह ऑडियो रिकार्ड लाई हूँ, आप सुनना पसंद करेंगे?"

"जरूर, सुनाओ प्यारी बच्ची"।

उसने ऑडियो आन कर दिया।

"नन्ही शारलेट हम लोगों की तन्हा निशानी थी जिसे ज़ालिम शोले हमसे छीन रहे थे, लेकिन एक मज़बूत जिस्म वाले काले शख्स ने अपनी जान ख़तरे में डाल कर उसे मेरी जलती हुई गोद से छीन कर अपने चौड़े सीने से लगाया था। मुझे उम्मीद है कि शारलेट बड़ी होकर उस काले रंग के शख्स से जरूर मिलती रहेगी, इससे मेरी रूह को सुकून मिलेगा। वह दूध जैसे सफ़ेद दिल का मालिक है और हम सब उसके एहसानमंद हैं"। मरने वाली की आवाज़ हवा में खो गई थी, लेकिन ऑडियो रिकार्ड घूम रहा था। ...यकायक शारलेट और विक्टर ने अपने सरों को उठाया, दोनों की पलकें भीगी थीं।

"यह रहा वह कीमती सरमाया जिसे मैं अपने कमज़ोर कंधों पर लिए अपने मोहसिन की तलाश में घूम रही हूँ। शुक्र है आप मिल गये। दरअसल मुझे आप जैसा खूबसूरत दिल अपने हमनस्लों में नहीं मिला... क्या मैं फिर कभी आप से मिल सकती हूँ...?"

“काश मैं तुम्हारे इस सवाल का जवाब हाँ में दे सकता। उफ! ये ज़ालिम समाज... अच्छा इस वक़्त कुछ ज़रूरी काम है इजाज़त चाहूँगा। “बात को खत्म करने के लिए विक्टर जल्दी से खड़ा हो गया।”

“ठीक है लेकिन मैं फिर आऊँगी”।

और कुछ दिनों बाद शारलेट फिर आई... “मुझे खुशी है तुम फिर आयी, शायद तुम दूसरों से अलग हो, विक्टर ने उसको खुशदिली से बैठने को कहा”।

“काश आप मेरी गिनती दूसरों में न करते।” ये कहते हुए शारलेट सोफे पर बैठ गयी और इधर-उधर की ढेर सारी बातें करती रही... उसके बाद शारलेट अक्सर विक्टर के यहाँ आती रहीं और काफी घुल मिल गई।

एक दिन मौसम खुशगवार था... फ़िज़ा धुली-धुली सी और हवा रुमानी थी। शारलेट आज रोज़ से अलग बहुत खुश और शोख़ नज़र आ रही थी शायद इस लिए कि आज उसने विक्टर से वह सवाल करने का इरादा कर लिया था जिसे कई बार कोशिश के बावजूद वह अब तक जुबान पर नहीं ला सकी थी।

विक्टर भी आज उसे इतना खुश देख कर ताज्जुब में पड़ गया था कि तभी वह बोल पड़ी।

“आप बुरा ना मानें तो एक सवाल करूँ?”

“बहुत खुशी से”

“आप ने अब तक शादी क्यों नहीं की?”

“मुझे फ़ुर्सत नहीं मिली”

“तो कोई साथी पसंद कर ही लिया होगा?”

“नहीं ऐसा भी नहीं है।”

“तो क्या मैं आप से कुछ कहूँ?”

“हाँ हाँ ज़रूर।”

दरअसल मैं सिर्फ़ आपके बारे में ही सोचती रही हूँ और मेरे दिल की तमाम गहराइयों में सिर्फ़ आप ही हैं। अगर मैं ये कहूँ कि मैंने आप को अपने लिए पसंद कर लिया है तो क्या आप मुझे अपनी ज़िन्दगी का साथी बना सकेंगे?”

“मेरा इन्तेखाब... तुमने अपने लिए? क्या कह रही हो? होश में तो हो?”

“जी हाँ, मैं अपने होश में हूँ मिस्टर विक्टर।”

“नहीं ये नहीं हो सकता... मेरे और तुम्हारे दरमयान दो बड़े फ़र्क़ रंग और उम्र के है... एक तो ये कि मैं पैतालीस साल का पतझड़ का मारा हुआ, दूसरे काला नीग्रो और तुम एक साफ़ सुथरी नई नवेली कली। ये नामुमकिन है।”

“लेकिन मैं फ़ैसला कर चुकी हूँ।” मिस्टर विक्टर।

“मेरी तुम से दर्दमन्दाना अपील है कि अपना ये फ़ैसला बदल दो और हम दोनों के बीच के फ़र्क़ को महसूस करो। क्या तुम्हारे डैडी की तमन्ना न होगी कि तुम्हारा शौहर तुम जैसा हो?”

“आप की बातें बहुत मायूस कर देने वाली हैं। लेकिन आप के लिए मेरे दिल में जो एहसास है वह मैं क्यों कर दिखाऊँ?”

“तुम्हें” तुम्हारे उन्हीं एहसास का वास्ता तुम अपनी राय बदल दो।”

“ये मुमकिन नहीं... मेरे साथ बड़ी मजबूरी ये है जैसा कि मैंने पहले भी बताया कि बचपन से मैं सिर्फ़ आप के बारे में ही सोचती रही हूँ। एक कमज़ोर दोस्त की हैसियत से क्या मुझे आपकी बाहों का सहारा भी नहीं मिल

सकता? मैं सिर्फ़ इतना ही जानती हूँ कि इन्सान चाहे सफ़ेद रंग का हो या काले रंग का लेकिन इन्सानियत हमेशा एक रंग की होती है। मैं बुनियादी तौर पर (Colour Blind) हूँ।”

“मैं बुज़दिल हूँ कि समाज के डर से तुम्हारी तरह नहीं सोच सकता, मगर जान लो कि तुम जिस गहरी खाई को अपनी या हम दोनों की लाशों से पाटना चाहती हो उसके लिए लाखों शारलेट्स और विक्टरस की ज़रूरत होगी। विक्टर ने समझाते हुए कहा।”

आपकी बात मेरी समझ से बाहर है। “ख़ैर मैं जा रही हूँ लेकिन क्या आप कभी मेरे घर आएँगे?” ...शारलेट उठते हुए बोली।

कुछ दिनों बाद शारलेट मशहूर माहिर जिल्द की क्लीनिक में देखी गयी... डॉक्टर खुद हैरत में था, अब तक उसकी क्लीनिक में कोई ऐसी लड़की नहीं आयी जिसने अपनी गोरी जिल्द काली करवानी चाही हो। उसके पास यह पहला केस था। डॉक्टर ने शारलेट को ऐसा ना करने के लिए बहुत समझाया, लेकिन मजबूर होकर उसे शारलेट की ज़िद पूरी करनी पड़ी और केस लेना पड़ा।

धीरे-धीरे सफ़ेद जिल्द काली पड़ने लगी। इस बीच शारलेट तमाम तर तकलीफों से गुज़रती रहीं। इधर विक्टर भी उलझनों का शिकार रहा उसे बार-बार ख़्याल आता। “शारलेट” ख़फा हो गयी। तभी तो वह इतने दिनों से नहीं आयी। इतनी अच्छी लड़की और इतनी अजीब ख़्वाहिश।” वह कई बार उसके घर गया लेकिन वह ना मिल सकी।

दिन गुज़रते गये ... काफ़ी अरसे के बाद शारलेट तमन्नाओं की एक दुनिया लिए विक्टर के घर आई। फाटक ही पर उसके कदम रुक गये... एक काली औरत विक्टर के साथ लॉन में टहल रही थी... शारलेट रुकी लेकिन फिर कुछ सोच कर आगे बढ़ गयी।

“शायद मैंने आप लोगों को डिस्टर्ब किया मुझे माफ़ कीजिएगा मिस्टर ज्वायस”।

विक्टर ने हैरत से पूछा “अच्छा तो आप मुझे जानती हैं?”

“जी हाँ आप मिस्टर विक्टर ज्वायस हैं और ...आप ने सही समझा ये मिसेज़ ज्वायस है।” (विक्टर ने इस काली औरत की तरफ इशारा करते हुए कहा।)

“अच्छा हुआ मिस्टर विक्टर कि आप ने मुझे नहीं पहचाना। मैं खुश हूँ... मेरा ये रंग रूप ही मुझे जिन्दा रखने के लिए काफ़ी है।

इतना कह कर शारलेट उन्ही सुनसान राहों पर चल पड़ी...

शारलेट के जाने के बाद विक्टर चौका जैसे यकायक अंधेरे से रोशनी में आ गया हो। उसने शारलेट का पीछा करना चाहा लेकिन बोझिल दिल ने साथ न दिया। वह दबी जुबान से बड़बड़ाता रह गया... “ऐसा नहीं हो सकता... अब क्या होगा? मासूम बच्ची...।”

शारलेट ने अपने बाप का घर, शहर, समाज सभी कुछ छोड़ दिया और एक अन्जाने शहर में (Negro Uplift Society) के दफ़्तर में Receptionist की हैसियत से काम करने लगी। उसकी ज़िंदगी मुसलसल तूफ़ान के थपड़े खा रही थी लेकिन उसने जीना सीख लिया था उसने जिस्मानी तौर पर विक्टर को ज़रूर खो दिया था लेकिन रुहानी तौर पर उसे और करीब खींच लायी थी। और वही उसकी लम्बी तन्हाईयों का सहारा था। वैसे दिल बहलाने के लिए काली आँखों वाली वह गुड़िया थी जो विक्टर ने कभी नन्ही ‘शारलेट’ को दी थी।

इस तरह दिन महीने और महीने बरसों में ढलते रहे। देखते-देखते शारलेट बुढ़ापे की सरहदों में दाखिल होने लगी। शायद उसे याद भी न हो कि उस की ज़िंदगी कभी शबाब की राहों से भी गुज़री थी। मगर वह अपने

आज और उस ठहराव की जिंदगी से खुश थी। उसे किसी कल (Tomorrow) की तमन्ना ना थी।

लेकिन एक दिन जब शारलेट Reception Counter पर कोई फाइल देख रही थी कि एक काला सा नौजवान उसके सामने आकर खड़ा हो गया और बोला।

“अगर मैं ग़लत नहीं हूँ तो आप मैडम शारलेट हैं ना?”

“हाँ तुम सही कह रहे हो, लेकिन तुम हो कौन?”

“आप की तलाश में मुझे बहुत परेशानी हुई। हालांकि आप की पुरानी तस्वीर में और आप में कुछ ज़्यादा फ़र्क है कहाँ?”

“मेरी तस्वीर... कहाँ मिली तुम को... आखिर तुम हो कौन?”

“आप की ये तस्वीर मेरे वालिद ने आप के डैडी से ली थी।”

“पहेलियाँ न बुझाओ अजनबी नौजवान।” शारलेट न घबरा कर कहा।

“मैं यहाँ कुछ न कह सकूँगा। क्या आप मेरे साथ कुछ दूर चलेंगी?”

शारलेट ने कुछ देर तक उस नौजवान को शक व शुब्हों की निगाह से देखा। फिर साथ जाने का फ़ैसला कर ही लिया। एक चर्च के पास पहुँच कर नौजवान रुक गया और शारलेट से कहने लगा।

“मैं विक्टर ज्वायस का बेटा एडवर्ड ज्वायस हूँ। उम्र की उन्तीस मंज़िलें तय कर चुका हूँ अपने वालिद की ज़बानी किसी शारलेट का नाम हमेशा सुनता रहा। अब तो डैडी इस दुनिया में नहीं रहे लेकिन उन की आवाज़ अब भी मेरे कानों में गूँजती है।”

“मेरे बेटे तुम सफ़ेद नस्ल काली शारलेट से ज़रूर मिलना। हो सकता है उसे किसी ने ना अपनाया हो तो बढ़कर तुम खुद को उसके कदमों में डाल देना। वह इन्सानियत की पवित्र देवी है। मुमकिन है तुम्हारी ये पूजा मुझे मेरे बोझ से कुछ हल्का कर दे। मैं उसके खुलूस व कुरबानी का कर्जदार हूँ।”

शारलेट ये सुनकर किसी अथाह समुन्दर में डूब गयी। काफ़ी देर बाद वह सतह पर उबरी...

“एडवर्ड... मैं तुम्हें नन्हा एडवर्ड तो ना कहूँगी लेकिन मैं ज़रूर बताऊँगी कि मेरी उम्र पचास साल है।”

“मुझे आपकी उम्र जानने की ज़रूरत नहीं... मेरे सामने इस वक़्त सिर्फ़ अपने वालिद का एहतेराम और आप की अज़मतों का ऐतराफ़ है... सामने कदीम (पुराना) चर्च हमारा मुहाफ़िज़ है। खुदा के लिए देर ना कीजिए, मेरे वालिद की रूह को सुकून बख़्श दीजिए।”

“अज़ीम बाप के फ़रमांबरदार बेटे। तुम खुशनसीब ठहरे अपनी माँ के लिए, ऐसी ही आरजू में मुझ बदनसीब की आधी सदी बीत गयी।”

इतना कह कर एक संजीदा ख़ामोशी के साथ और गहरी सांस लेते हुए शारलेट ने अपना हाथ एडवर्ड के हाथ में दे दिया और दोनों आहिस्ता-आहिस्ता चर्च में दाख़िल हो गये।

शारलेट के चेहरे पर मरियम की मासूमियत झलक रही थी... और बड़े मेहराब के पीछे मरियम का पवित्र बेटा सलीब पर चढ़ा। इन्सानियत की फ़लाह (भलाई) के लिए दुआ कर रहा था।

प्रो जुबैदा हबीब
(Guest Faculty, MVCE)

मुखौटा और संस्कृति

मुखौटा विश्व की मानव संस्कृति की अत्यंत महत्वपूर्ण धरोहर है। इसका इतिहास प्रागैतिहासिक काल से ही जुड़ा हुआ है। जब मानव के पास भावों को व्यक्त करने वाली भाषा भी नहीं थी। उस समय भी मुखौटा कला एक ऐसी माध्यम बनी जिसने मानव के भावों को अभिव्यक्ति दी। संसार के अनेक देशों की संस्कृति के इतिहास में भी मुखौटा ही सबसे ऊपर आता है जो देसी संस्कृति एवं धार्मिक, सांस्कृतिक क्रिया-कलापों का प्रतिनिधित्व करता है। मुखौटा संस्कृति इतनी व्यापक और गहन है कि अरब देशों को अगर छोड़ दिया जाये तो संसार में ऐसा कोई भी देश नहीं है जहाँ मुखौटा संस्कृति विद्यमान न हो। मुखौटा संस्कृति की विश्व व्यापकता और मानव सभ्यता में इसका महत्व उपरोक्त बातों से परिलक्षित होता है।

मुखौटा एक ऐसा चेहरा है जो विभिन्न रूपों और रंगों से सजाया गया है। यह अनेक प्रयोजनों के समय पहना जाता है। मुखौटों के विभिन्न प्रकार भी हैं। मुखौटा अधिकतर देशों की मानव संस्कृति का अभिन्न अंग है जो उनके जीने के ढंग, सोचने के तरीके और वैचारिक स्तर का भी प्रतिनिधित्व करता है। इसलिए हमारे समाज में एक सांस्कृतिक धरोहर के रूप में यह आज भी जीवित है। मुखौटे इस संसार में अर्वाचीन समय से विकास की प्रक्रिया से गुजरते हुए आये हैं। यह किसी एक मानव के साथ नहीं अपितु समाजों से जुड़ा हुआ है। आदिम काल के मानव ने इसका आविष्कार किया और अपने जीवन और समाज का अभिन्न अंग बना लिया। मुखौटे की भूमिका धर्म, संस्कृति, लोक व्यवस्था, कला, तंत्र, चिकित्सा, परामौतिक व्यवहार आदि में आगे बढ़ती चली गई और जन्म से मृत्यु तक साथ ही लोक जीवन के धार्मिक अनुशासन तक की अनिवार्य वस्तु बन गई।

अगर हम भारत की बात करें तो हजारों वर्षों से जीवन्त आर्य जाति से लेकर साधारण पहाड़ के निवासियों ने भी मुखौटों का प्रयोग किया है। रामलीला, रासलीला में जो लोगों की श्रद्धा और विश्वास की अटूट परम्परा है, इस परम्परा में मुखौटों का भी योगदान रहा है जो भावों की अभिव्यक्ति में अत्यधिक सहायता प्रदान करते हैं। भारत के इतिहास को देखने से हमें पता चलता है कि प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल में भी मुखौटों की प्रसिद्धि और महत्व कम नहीं हुआ है लेकिन कला में नये प्रयोग न होने के कारण यह लोकप्रिय नहीं हो पाया है। लोक नृत्य व लोक नाट्य परम्पराएँ तो मुखौटों के बिना अधूरी हैं। देश में पारम्परिक मुखौटे आज भी बनाये जाते हैं जो धार्मिक प्रदर्शनों, अनुष्ठान इत्यादि में प्रयोग किये जाते हैं। हिमाचल के कुछ जिलों में देवताओं के मुखौटे इस तथ्य को ध्यान में रखकर बनाये जाते हैं कि देवता की मूर्ति को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाना कठिन है। देव उत्सवों पर मुखौटे ही देवताओं का प्रतिनिधित्व करते हैं।

भारत में नाट्य परम्परा अति प्राचीन है। यह मनुष्य के भावों को व्यक्त करने का सशक्त माध्यम है जिसके अंतर्गत मुखौटों का अत्यधिक महत्व है। नाट्य परम्परा में कथकली जैसे नृत्य-नाट्य हैं जिनमें मुखौटों का उपयोग होता है। चेहरों को विभिन्न रंगों से रंगकर मुखौटों के स्वरूप का प्रभाव उत्पन्न किया जाता है। यह दक्षिण भारत के केरल प्रांत की प्रसिद्ध नाट्य परम्परा है जो भौतिक विशेषता के कारण पूरे दक्षिण भारत में लोकप्रिय है।

मानव शास्त्रियों के विचारों को देखें तो करीब सात साल पहले तक भारतवर्ष में करीब एक हजार मुखौटों का अस्तित्व था जिनमें बौद्धों के महाकाल के प्रसिद्ध मुखौटे, सिक्किम, लद्दाख, केरल के कथकली, यक्षगान, नागा, महाराष्ट्र और गुजरात के कुकाना और वारली जातियों के लोक मुखौटे उल्लेखनीय हैं। इन मुखौटों में बौद्ध धार्मिक आनुष्ठानिक नृत्य, कृषि नृत्य, लोक संस्कृति में प्रयोग किये जाने वाले मुखौटे और विविध प्रयोजनों वाले मुखौटे सम्मिलित हैं। भारत या विश्व के किसी भी मुखौटों का अध्ययन हम करते हैं तो इसमें मुखौटों के प्रकार, प्रतिमा-लक्षण, रंग व उनके साथ जुड़े रीति-रिवाज और पूजा जिसमें धार्मिक और लोक विश्वास, उद्देश्य इनसे जुड़ी कथाएँ आदि सबको एक साथ जोड़कर ही कार्य करना होगा। तभी हम मुखौटों का अध्ययन हम कर सकते हैं।

मुखौटों को बनाने की सामग्री, उसको बनाने की विधि और बनाने वाले लोगों के विषय में जानकारी होना भी कम रूचिकर नहीं है। इस प्रकार का अध्ययन केवल मुखौटों से सम्बन्धित न होकर सांस्कृतिक अध्ययन को भी जोड़ लेता है। अतएव मुखौटे का अनुसंधान सांस्कृतिक, धार्मिक या लोक अध्ययन का अभिन्न अंग है। भारत में पाये जाने वाले मुखौटों का कार्य भी दूसरे देशों की भांति ही समान भूमिका में कार्य करता है। यह एक आश्चर्यजनक रूप से समझी गई बात है कि उस समय जब मनुष्य के पास साधन भी नहीं थे, कैसे सभी देशों में मुखौटा परम्परा के कार्य एवं भूमिका समान रूप के हैं। लोक संस्कृति में इनका महत्त्व बेजोड़ रहा है। सभी देशों में मुखौटों को पवित्र वस्तु माना गया है, विशेषकर धार्मिक और तंत्र से जुड़े हुए मुखौटों का। लेकिन बाकी मुखौटे भी अपने कार्यों में अनुपम हैं। प्राचीन काल से ही लोगों ने इसे पूर्वजों की विरासत और दूसरी दुनिया से संपर्क साधन के माध्यम के रूप में इसे अपनाया है, तभी तो आज भी इसका अस्तित्व हमें दिखाई देता है।

यूनान में धार्मिक उत्सवों के अवसर पर देवताओं की मूर्तियों के आरोपण के लिए सबसे पहले मुखौटों का प्रयोग किया गया था। अफ्रीका में तो जन्म से लेकर मृत्यु तक के मुखौटों का काफी प्रचलन था जो आज भी उतने ही लोकप्रिय हैं। वे इनमें अपने देवताओं और पूर्वजों की छवियाँ देखते हैं। इसलिए इन्हें खूब सजाते हैं तथा इनके अनुष्ठान में कोई भी चूक नहीं करते क्योंकि वे इनकी अदृश्य भक्तियों के कोप के भाजन नहीं बनना चाहते। दुनिया के हर कोने में विशेष रूप से एशियाई देश जैसे थाईलैंड, मलेशिया, श्रीलंका इत्यादि सभी स्थानों में सांस्कृतिक, उत्सवों के लिए मुखौटों का प्रयोग होता रहा है।

मुखौटों के इतिहास को बिना समझे इसकी भूमिका को समझा नहीं जा सकता। इसके आरम्भ की बात करते ही पाशाष काल की कला की ओर ध्यान जाता है। जहाँ इसका पहला साक्ष्य दक्षिणी फ्रांस की त्राय फेअर्स (Trois Freres) की गुफा से मिला है। इसके साथ-साथ मुखौटों की आदिम जानकारी अनेक देशों के भौल चित्रों से मिली हैं जिनमें फ्रांस की केवरॅन-डु-वॉल्प (Caverne-du-volp) गुफा के उत्कीर्णन भी शामिल हैं। स्पेन की अल्तामीरा (Altamir) गुफा, तंजानिया की कुंडूसी (Kundusi) तथा इसके साथ विभिन्न देशों जैसे नाईजर (Niger), लीबिया (Libya), न्यू मैक्सिको (New Mexico), स्वीडन (Sweden), पेरू (Peru) इत्यादि से भी हमें भौल चित्र मिलते हैं। अफ्रीका के थ्रीब्स (Trebes) के ममी मुखौटे एक दिव्य विरासत के रूप में मिलते हैं। इसके अलावा रोम के सुनहरी मुखौटे जिनमें आँखें हैं पर होंठ नहीं हैं, भी मिले हैं। रोम और यूनान के हास्य मुखौटे तो अपने अंदर एक अति उत्साहित करने वाली हँसी समेटे हुए हैं। विकास के क्रम में मुखौटे यूनान, रोम, मिस्र और अन्य एशियाई देशों से गुजरे हैं जो ऐतिहासिक विकास के लिए महत्त्वपूर्ण हैं, उनका वर्णन किया गया है। मुखौटों के इतिहास के विषय में वर्णन के क्रम में भारत के मुखौटों के ऐतिहासिक पक्ष का भी वर्णन किया गया है। भारत में भी मुखौटों का चित्रण प्रागैतिहासिक काल के कुछ भौलचित्रों में दृष्टिगोचर होता है। इन भौलचित्रों में चित्रित मुखौटों को हम आरम्भिक काल का मानते हैं और कह सकते हैं कि शायद मुखौटों का जन्म यहीं से हुआ होगा। सबसे प्रथम उदाहरण जो मानव चित्र में मुखौटे का प्रतिनिधित्व करता है, वह मेसोलिथिक कालीन है। इसी तरह भारत के अनेक स्थानों जैसे पंचमढ़ी (मध्यप्रदेश), भीम बेटका की गुफाओं के भौलचित्रों में बहुतायत से मुखौटों अथवा मुखौटानुमा आकारों को देखा जा सकता है और ऐसी आकृतियों को मुखौटों के अतिरिक्त कुछ और नाम नहीं दिया जा सकता।

बड़ों से लेकर बच्चों तक, आदिकाल से वर्तमान काल तक, गाँवों से लेकर शहरों तक, जन्म से लेकर मृत्यु तक, शोक से लेकर मनोरंजन तक सभी स्थानों पर मुखौटा कार्यरत है। हम इसकी उपस्थिति से अनभिज्ञ क्यों न हो पर यह हमारे आस-पास ही विद्यमान है और स्व से लेकर जनसमूह और उससे भी आगे दूसरे लोक की शक्तियों के साथ संचार कर रहा है।

विश्व के अनेक देशों के पर्वों में पहने जाने वाले मुखौटे धार्मिक या सांस्कृतिक होते हैं। विश्व पर्वों और उस

अवसर पर होने वाले मुखौटा प्रदर्शनों द्वारा संस्कृति का संचरण एवं संचार भी समाज में होता है। सामाजिक प्रयोजनों में मुखौटों का प्रयोग समाज की विकृतियों को उजागर करने तथा लोगों को जागरूक करने के लिए किया जाता है। मुखौटों का प्रयोग, विज्ञापन, समाचार पत्र में आने वाली अन्य प्रचार सामग्री इत्यादि के रूप में भी किया जाता है। वर्तमान समय में तो शैक्षिक क्रिया-कलाप, व्यापारिक या शिक्षा मूलक संदेशों के सम्प्रेषण में भी मुखौटों का प्रयोग किया जा रहा है।

मुखौटे कई लोक और पारंपरिक प्रतियोगिताओं, अनुष्ठानों, समारोहों में एक परिचित और विशुद्ध तत्व है जो अक्सर एक प्राचीन मूल के ही हैं। यह लगभग सार्वभौमिक रूप से उपयोग किया जाता है और पहनने वाले और दर्शकों दोनों में अपनी शक्ति और रहस्यों को बनाये रखता है।

वर्तमान समय में न केवल भारतीय मुखौटे बल्कि संसार भर के मुखौटों का प्रयोग केवल जनजातीय या आनुष्ठानिक समारोहों के लिए ही नहीं किया जाता। बल्कि ये दीवारों की सज्जा के लिए कला के रूप में हैं, जिन्हें कला दीर्घाओं और प्रदर्शनियों में प्रदर्शित किया जाता है। कथकली नृत्य-नाट्य मुखौटे, स्मृति-चिह्न एवं सजावटी सामग्री के रूप में बाज़ार में उपलब्ध हैं। ये मुखौटे, मिट्टी, प्लास्टर ऑफ पेरिस या कागज़ की लुगदी से बनाये जाते हैं। इन पर विभिन्न रंगों की कलात्मक कारीगरी इन्हें सजावटी बनाती है। इन्हें आभूषित भी किया जाता है। इस प्रकार के मुखौटे न केवल घरेलू पर्यटकों बल्कि अंतर्राष्ट्रीय पर्यटकों को भी लुभाते हैं। मुखौटों का एक कलात्मक और मायावी संसार है जो उसे विविधता प्रदान करता है। सृष्टि में पाये जाने वाले लगभग सभी रूपों पर उसका आधिपत्य है।

**डॉ. सुलेखा भार्गव
(Resource Person, MVCE)**





SEP का Rotation

खत्म होने को है 'SEP',
अब Rotation की बारी आई है।
आएँगे नए-नए Supervisor देखने को
आखिर हमने क्या-क्या पाठ पढ़ाई है।

डाली गई थी जो ज़िम्मेदारी हम पर,
क्या हमने उसे निभाई है ?
कुछ सीखा भी है बच्चों ने हमसे,
या हमने यूँ ही बीन बजाई है !

कमर कस लो सब
अब दिखाने की बारी आई है।
क्यों डरना Rotation से,
हमने यूँ ही रातों की नींद नहीं गँवाई है।
की है मेहनत यह एक सच्चाई है,
डर किस बात का जब हमने शिक्षक धर्म निभाई है।

देखते ही देखते बीत गए दिन,
अब तो बच्चों से बिछड़ने की बारी आई है।
क्यों डबडबाई हैं आँखे मेरी, बता ऐ मन
ये भ्रम है मेरा या वाकई आँसू छलक आई है।
मन ने कहा क्यों बहला रहे हो खुद को,
कोई भ्रम नहीं तेरा, ये आँसू एक सच्चाई है।

प्रवीन कुमार झा

दास्तान-ए-कॉलेज

ज़िन्दगी को रंगीन बनाता है कॉलेज
सपनें हसीन दिखाता है कॉलेज
रंग ढंग दुनिया बताता है कॉलेज
मान सम्मान बढ़ाता है कॉलेज

आदमी को सभ्य बनाता है कॉलेज ,
बोलेने का लहज़ा सिखाता है कॉलेज ,
मंच भय को भगाता है कॉलेज ।

सुबह-सुबह जल्दी उठाता है कॉलेज
सोए अरमान जगाता है कॉलेज
एक नई पहचान दिलाता है कॉलेज

पत्थर दिल को भी पिघलाता है कॉलेज ,
आंखों में बातें कराता है कॉलेज ,
सपनों में भी याद आता है कॉलेज ।
सपनों में भी याद आता है कॉलेज

भटके को रास्ता दिखाता है कॉलेज ,
मीठी सी यादें छोड़ जाता है कॉलेज ,
याद, बस याद, आता है कॉलेज ।

विवेक यादव

STHAPNA DIVAS



संचेतना-2015

संचेतना-2015

ANTARDHVANI



संचेतना-2015

संचेतना-2015

ଓଡ଼ିଆ ଭାଷାରେ ଲେଖାଯାଇଥିବା ଏହି ପୁସ୍ତକଟିକୁ ଉତ୍କଳ ବିଶ୍ୱବିଦ୍ୟାଳୟ, କଟକର ପଢ଼ାଳୟରୁ ପ୍ରକାଶ କରାଯାଇଛି।

ଓଡ଼ିଆ ଭାଷାରେ ଲେଖାଯାଇଥିବା ଏହି ପୁସ୍ତକଟିକୁ ଉତ୍କଳ ବିଶ୍ୱବିଦ୍ୟାଳୟ, କଟକର ପଢ଼ାଳୟରୁ ପ୍ରକାଶ କରାଯାଇଛି।

ENGLISH

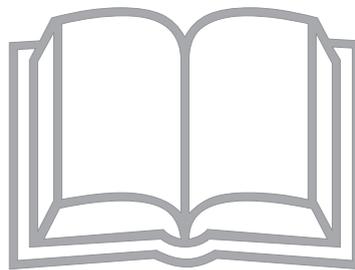
Divine Concealers

These blank pages, blank like an unwritten destiny,
 Waiting in silence to be filled,
 Good or bad, evil or divine,
 as if staring at me they eagerly wait.
 With each stroke stare at my fingers moving,
 As if waiting for me to complete.

Why have you turned me to a God?
 Why do you remain silent and let me decide your fate?
 It is me now who is stressed under the guilt,
 looking at the ruin I do to you,
 and you stay silent in your decorum.

You accept what I make of you
 and take the blame of my hands upon yourself.
 This world then blames you of keeping the dirty secrets,
 Secrets which belonged to the hands of others.
 In a fix I am whether it is me or you who
 resembles God,
 You liberate me from the prison bars of the guilt
 and give away your neat freedom
 to get entangled in mortal words.

If not in you, these words have gone in some ears,
 Came out of mouth with modifications after a long
 travel from ear to mouth
 But you keep them to you and after being exploited to
 the core of your heart,
 You close yourself in tears forever,
 dug down deep you never utter,
 but still remain silent and with silence till eternity.



Rivika Chauhan

Life As We Know It

There are many things in life which are really important but what matters the most is individuality, respect among people and what you think about yourself and how you can contribute to the society.

Family is like a protective shell which is always there for you and accepts you the way you are. There are no pretensions, no formalities and family loves you unconditionally. We are never given a choice to choose our family yet we never regret it and instead our parents become our idols. This idea is reflected through our ethics and morals which we inherit from our culture.

The aspect of morality is important and I aspire to become a good human being. The definition of a good human being is by his/her doing. It is about how you treat your inferior. Doing something for society always makes me happy and there I feel that I am doing something really productive. A suitable example is teaching students during my School Experience Programme (S.E.P).

There are many types of people in the world. Some will be good to you, some will try to take an advantage and some will try to spoil your reputation. That does not mean that you do the same. You have to win over them by your own goodness. As Darwin says "The survival of the fittest is desired". With this I would say that competition is equally important. Being ambitious is not a bad thing. Everyone wants to earn more and more money with their skills and abilities. But what matters is how this money is earned and used. The money earned is through the people so it should be regulated back again in the society by helping other people in some way or the other.

People should help other people in all possible ways such as by doing charity, donating useful things or food. Our generation should be the one who should actually bring in change to the society in 'real sense' be it Indian politics or issues related to class, caste, gender, etc.

You should think good and there will be positivity around. The opinion of people should not affect you. Criticism is a part of life We should keep that in mind and move ahead without repeating the same mistakes.

Everyone should remain happy and remain contented and that is what will lead all of us to a better life. True happiness or victory in life is having the tools to take on each hurdle, overcome it, and become stronger and wiser in the process.

Ekjot Kaur

Faith, Hope And Love

We are often faced with difficult situations in our lives. There are times when we feel so utterly helpless. It feels like our world is almost crashing down. We are exhausted and just want to give up. I am currently going through one such situation of my life. And I know of many others who are having more difficult times. But during all such times the three things which helped me sail through are: faith, hope and love.

Very recently I read a story on a social networking site called Quora. The story is that...there was a village which was solely dependent on agriculture and it was a very dry year. It had not rained at all and the villagers were suffering. So all villagers decided to gather and pray for rain. On the day of prayer, only one boy came with an umbrella. That is faith. No...not the prayer. Not the concept of God...but...the trust, the belief that the child had... Only he among all the villagers actually thought that if I pray for rain, it will rain...so I better be prepared. How many of us has that kind of faith? Let us not restrict the term 'faith' by associating it with God, prayer etc. At least, for me it is broader than that. Faith is when we trust completely. It could be on a thing, on an 'omnipotent presence', on beliefs, on our abilities, on people...in just about anything. But it calls for full, complete belief. We just ought to blindly believe. No questions asked, no scope left for doubts...just absolute blind trust. That is faith.

So...what is the big deal about faith? The big deal is that actually makes things happen. You know that one friend you can always bank on...no matter what time of the day it is. The one whom you call when you do not want to be let down. Ever thought how it works out? It is nothing but faith...

I am sure we all have such people in our lives. We know without question that he or she will help us out and invariably we get that help. There is no 'if' or 'but' there. There is just faith...complete, absolute faith.

I know for sure that I need to have faith in something to be able to live. Because without faith, everything will seem uncertain. I can say this because something big that happened in my life. Yesterday, today, tomorrow...throughout my life I will look back upon this one incident and I know that it will help me sail through.

I was in class VI. It was December 2004, Christmas time. Back then my family used to be staying at Kalpakkam. It is a small township, about a 100 km away from Chennai. It is famous because of an atomic power plant located there. As you know that atomic power-plants are generally situated near sources of water for the cooling tower and all. So this township too is situated on the beach. We know that on 26th Dec. 2004, Tsunami shook the entire nation. All the residents of this township were among the millions who were affected by the 'killer waves' as they call it. I will always be grateful to God that I survived it. I and my entire family made it through those killer waves while we actually saw hundreds of people losing their lives.

As the waves hit they took me, my mother and my grandmother. We floated along and

reached a tree. All panicky and scared and helpless and what not. Words will never be sufficient to express how it all felt. My mother was holding my hand tight. On her other hand she held her own mother. We hit a tree. I do not remember what we were saying then or what were the words of the people all around us in water but I heard my mother tell me, "Diya, hold on to that tree!" I do not remember anything more than that. I just heard those words and had almost held on when a big ripple came and hit us. Floating as we were, the ripple hit us so hard that my hand got separated from my mother's and her hand got separated from my grandmother's hands. We three went in different directions.

I did not know swimming. I still do not. So in all possibility I would have drunk the slimy water and suffocated to death. Drowning was not possible because the water was dense. I had all reasons to give up. I did not have any support. I did not know what was to happen next...whether I would be alive or dead. Whether I will ever see my mother again...I did not know anything. Had I given up then I would not be alive now. But at that time only one thing I could hear ringing in my ears... "Diya, hold on to that tree!" Miracle I will call it...I somehow covered a distance of five-seven feet and reached back at the same tree and held on. And that is what saved me. I am alive today because I had faith. I had faith in what my mother said. All I wanted to do was to hold on to that tree and I held on because mother had said so. I did not know then, that I will survive this but my faith saved me. There is always a divine power I believe in.

Let us now look at hope. Every night we all go to bed without any assurance of being alive the next morning. But still we all keep alarms to wake up. Why is that? We all leave our loved ones back home and go around doing our work. But then we return home expecting to see them all safe and sound. What is that? It is nothing but hope. We have hope in everything we do. Hope is what makes everything work. Hope is what makes us keep the very next step. This is a world where we have no guarantee for anything. Nothing will last forever. Yet we all expect and dream for so many things...that is hope.

Coming back to my experience, the same day, same time, my father had gone to the market. The market was on a higher place so the waves did not get there. Me, my mother, my maternal grandmother (naani) and father were at the church which is on the beach. My sister and many cousins and extended family who had come home for Christmas were at home which was 50mtrs away from the beach, in the opposite direction of the church. When my father got to know about this incident, he obviously didn't know what to do, where to go. He must have been shocked! He had to do something as about half his family who were at the church and the other half who were at home. He saw everything happen, people suffocate and bleed to death. He had all reasons to give up. He could have simply believed that he had lost his family and would never get any of them back...at least us who were at the church might be dead. But he had hope. He hoped that may be...just may be we are all fine. May be we ran to shelter when there still was time. May be even if we are hurt. He can save us. And that made him come looking for us. And thank God he had hope because otherwise we would have forever been left alone. We would have been separated for a long long time. He came to save us and then went on to give help to the people at home and further to render his duties as the security head of the whole township.

Things worked out fine for him. Though we all had physical wounds and emotional scars he got back

all of us, all sixteen of us including eight small children. There was no guarantee that any of us will be fine. But his hope saved us.

Finally we come to love. We all know what love is. Now I would shift the focus from there to beauty as the meaning of love. Love makes things beautiful. Whatever we love...from people to things... everything that we love becomes beautiful.

What we do not love is not so beautiful. The irony here is that we want everything around us to be beautiful and yet we are so incapable of loving everything around us. Isn't that why there is so much 'ugliness' around us? Because we do not love enough? Just imagine how beautiful this world would be if only we could love everything about life.

Even for me, the Tsunami...which was a dreadful experience is now a beautiful memory. Because that day I had seen love manifest itself in all forms. The love of humanity where people selflessly came forward to help the victims. The love of family who stood by us till the time our emotional wounds were somewhat healed. The love of God who gave all of us so many lessons.

When I look at it in the light of love it is all so beautiful. I remember being told that even though me and my grandmother could not see each other, once we were separated by the ripple, she was crying out to God to save me, her sweet little daughter. And I remember the concern and love with which my grandfather saved a little child whom he had never met. I remember the many parents who gave their own lives to save their children. The friends who braved it all, the strangers who cooked for us and clothed us when we had lost it all. Love makes everything beautiful.

There was once a man who loved his wife a lot. His wife used to be a mountaineer. She died during one of the expeditions. After that, her husband started to climb that mountain. He climbed it several times for years. His aim was to get a last glimpse of his wife. He never gave up. Never.

You will think he was crazy. Right? After years the body would have decayed and died. And anyway, how was he to find a body on the mountain when he does not even know where to look for it?

But...he loved his wife a lot. He hoped to get a last glimpse of her and he had faith that searching for her would yield results. So all his climbs were beautiful for him. He had a purpose in life and was not going to give up. And you know what? He actually did find his wife. After many years on the same mountain. Her body was preserved in due to the ice on the mountain.

This story describes very aptly what I wish to express that-Faith makes all things possible. Hope makes all things work and love makes all things beautiful. So have faith, never lose hope and always find out reasons to love.... Because like Mae West said,"we live only once....but if we do it right, once is enough! And if we have faith, hope and love...we will never go wrong."



Diya Elizabeth Kurillose

Blood should flow in veins and not in drains

A smile on every face
Irrelevance of skin complexion
All family of the human race
Realised upon reflection

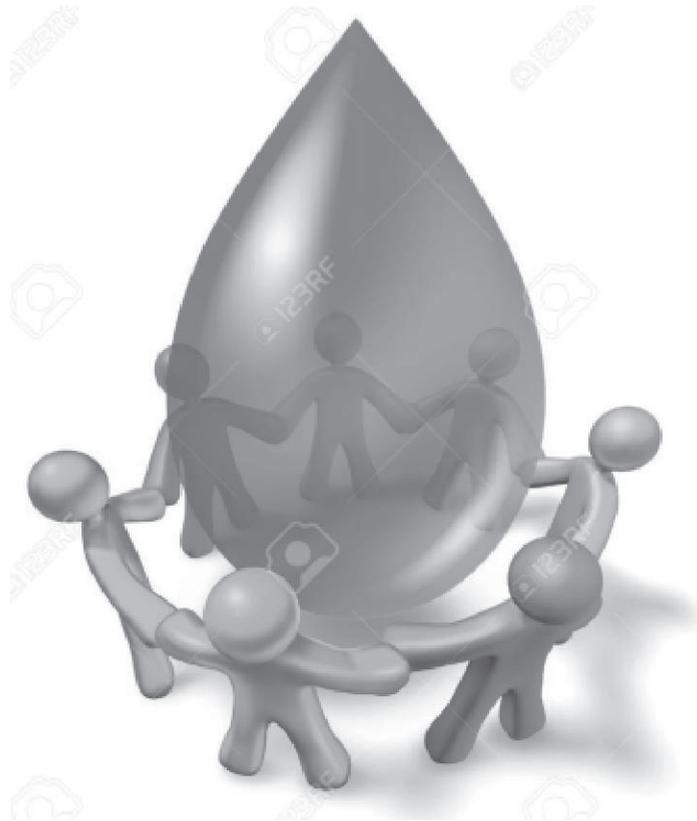
We all possess the same inside
The mind, the soul and the heart
Known by all, this is no confide
Realisation is only the start

The breath of life flows
Vibrantly through our veins
Blood from head to toes
Not meant to cause T-shirt stains

A life is saved by a blood donation
We all need it to live
Why does it matter the person's nation
When they are willing to give

Somebody's wife
Somebody's life
Somebody who could have been you
Put down the gun, put down the knife
And instead see what help you could do

We are all the same, we all feel emotion
Every person has blood that is red
We are all droplets of God's boundless ocean
This life is a journey, choose the path you will tread.



Samdisha Alagh

In Search of Humanity

Who are we?

What is our purpose?

Why are we?

Are we really what we are?

Dilemmas of our life...

WHO ARE WE?

We all are "HUMANS" as said by our mentors, society, our ancestors and also it is scientifically proven. Are we what they all define us as or are we something else? What are our qualities that differentiate us as 'HUMANS'?

Humans are said to have brain as a functionality to think beyond co-ordinates that differentiates them from animals. While classifying humans they also introduced another quality of humans that differentiates them and that was "HUMANITY". Humanity to show care, love and respect for our inferiors and superiors both. Animals can not help others in a way that humans can.

Let us now search within us. Are we Humans?

WHAT IS OUR PURPOSE?

As we show outstanding qualities that could be used to raise mankind in all possible and appreciable ways, so our purpose should to be to serve mankind. Do we really serve mankind? Or do we just fight for territories and landmarks? Hey! Wait a minute! Isn't this what animals do? so... Are we Animals? Whoa! But we have brains to think vastly as per definition of humans. So who are we in reality? Now unless we define ourselves how are we going to find our purpose?

WHY ARE WE?

Isn't it enough to have plants and animals only on this earth? Plants produce oxygen for animals to breath & animals produce carbon dioxide for plants to function and minerals for soil via their excreta. So what is the purpose of our presence on this earth. Do we also provide something back to mother nature for getting life on this earth or do we just destroy the raw resources for our greedy purpose?

ARE WE REALLY WHAT WE ARE?

Do we stand to the definition of human? Do we help others when required? Or do we just watch? Are we scared of helping? Why are we scared? Is there something to be scared of? If yes then what is that and why so? All answers lie within ourselves. We just have to see our inner selves what we actually are. It is never too late to change for good and there is no time limit to be good. You can just stay good for your whole life. Even there is no tax to be good! Isn't it really great? Humanity costs nothing! Rather we get love, respect and care in return.

DILEMMAS OF OUR LIFE...

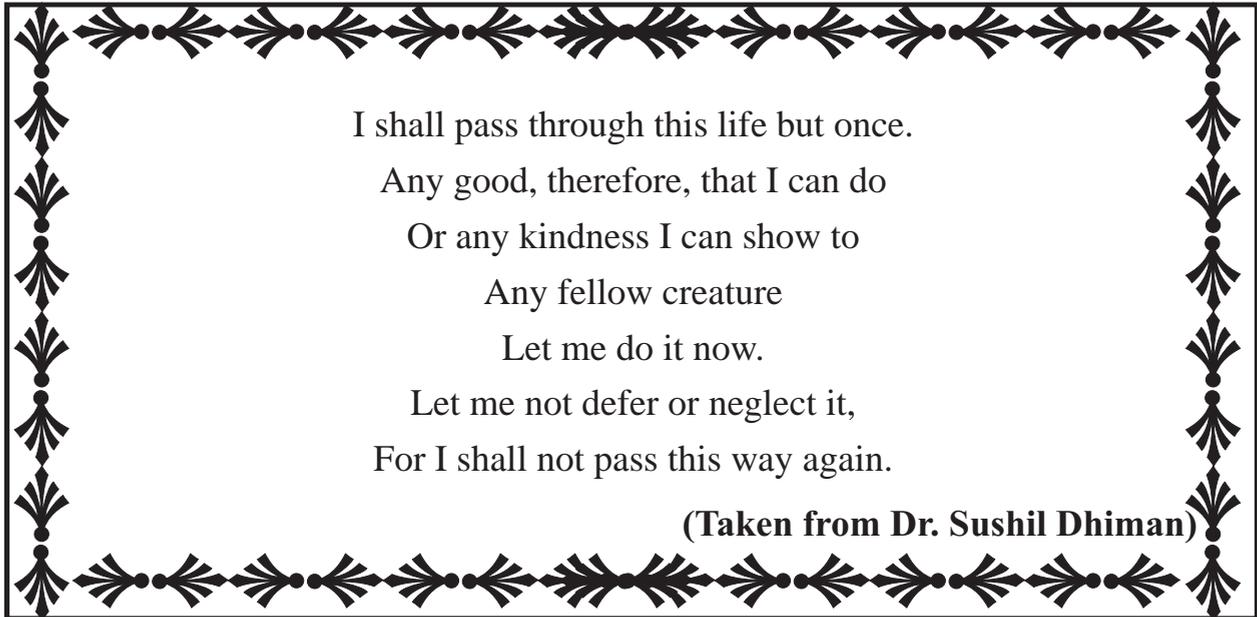
We all come through different dilemmas in our lives where it is difficult for us to distinguish between right and wrong; what is good and what is bad. Let us play a role-play!

For a moment let us suppose you live in a house on rent with your family. You love dogs and even love to feed street dogs outside your house. Let us say you are pretty close to those dogs. But wait... you live in a rented house so there are landlords present in the story. The twist is that the landlords do not approve of the dogs in the house even anywhere near the house. They have recommended the same to you also. Now comes the deciding situation for you. It is midnight and you find out that there is a 'hailstorm'. You see the dogs standing at the front gate of your house and they are crying to come inside the house. You ask your parents to let them come in but you get a no with usual remarks that it is not our house and the landlord will get angry if they hear of such instance.

There comes your inner voice- "Oh common! It is a hail storm. They could get hurt and also it's midnight! It's dark. May be the landlord has gone to sleep."

Now what will you do? Will you let the dogs come inside? Or would you just let them get hurt in the hailstorm? Or just follow the instructions of your landlord because you live in their house. Leaving you to ponder over the thought... In search of Humanity.

Monika Tanwar



Lost Morality: An appeal to search for real meaning of education in today's context

Today when we talk about education we can easily observe that our society including parents, relatives, neighbors, peer groups and many other members of our society directly link the education to marks, degrees and prestigious education institutes.

But have we ever introspected on the question of real meaning of education. Is it really that the purpose of education is only to secure marks, to have a degree, or to get admission in prestigious education institute? In this article we will explore the real meaning of education which we have forgotten over the years.

The Real Meaning of Education

The real meaning of education is to facilitate a person in developing the constructive ideas for the welfare of the society. When we talk about the education of children it is not rote learning or memorizing the concepts and vomiting them on a piece of paper. An ideal education for children is to assist them in becoming capable enough so that they can solve their day to day problems wisely with the help of their learning and try to fill the existing gaps so as to bridge them.

It is the fact that each and every child is unique in her or his own. Every child has hidden talent in a particular field. For a teacher it is very important to make students realize their hidden talents and assist them in accelerating in their areas of passion and thus optimizing student's potential which in itself will do great to society. But again it is the question of introspection. Do we teachers really do introspect?

In our day to day lives we have witnessed numerous examples of people who are educated but not morally developed. We have seen many examples of doctors and engineers who indulge in inhuman practices or anti social practices. They misapply their professional skills which they acquire from education, i.e. they used their boon of acquired education and turn it into bane. We can find these kinds of articles in newspapers how some so called post holders, big or small or reputed degree holders took the advantage of their authority and powers for their personal motives at the cost of humanity or innocent humans. All these examples are blunder of perceptions of our society which has made education directly connected with success and money restricting it to only a game of name and fame.

On the other hand we have seen the examples of people who are said to be illiterate but they have created benchmarks in providing their services to society. We can easily find such kind of examples in our day to day lives if we are really aware, sensitive and responsible towards our society. Again it is the question of introspection who is educated in real sense?

Need for Reflection

Somehow it is a our big fault that we have been unable to impart the true meaning of education in our society because only after igniting the sparkle of true education we can eliminate the darkness from our society. Education with morality is the ultimate tool which can arise and awake a major part of our society that currently is satisfied with wrong definition of education. All the problems including corruption, crime and other anti-social practices by educated and uneducated persons are associated with the common problem of lack of awareness in our society about the real meaning of education.

“Lost Morality” is one of the most burning issues in today's context on which it is our prime duty to reflect upon as educationists and to search for possible measures to combat with this social evil of today's world. I hope this article would awaken our souls and will persuade us to combat and build strategies to overcome this challenge.

Sagar Khetwani

Life for once, Life for ever

Life

A Dream

When the world is visible

World to be felt,

World to be touched,

World to be tasted,

World to be heard,

World filled with stories.

Stories of those,

Who were yesterday,

Who are today,

Who will be tomorrow,

No fact,

No idea,

for today,

for tomorrow

for death

Whatever it is ,

is this moment.

Moment,

to feel peace

to feel success

to feel the smile

So no sleep

Until I die

Until you die.

Aradhana

Societal Standards

All my life I have attended a lot of weddings and social gatherings. I couldn't help but witness the undue importance given to some very dear standard notions of the society. I am sure everyone has done that at some point in their lives, sooner or later, unconsciously accept themselves as an inherent part of it. Time and again such notions would keep having on or off effect on us. But what I am more concerned about is that we all are conscious about it and still never bother to change these societal standards. I am sure it is not just me but many others who would have had the pressure to look lean, beautiful, to perform well in our schools, colleges, to behave properly in front of our elders, to talk, yet not talk more than what is required and a huge strange list of do's and don'ts. All our lives we keep wondering what is right and what is wrong, what to do and what not to do.

If you attend a family function with a dress too decent, you are probably trying to pull down your family's respect. If you wear something too loud, you are definitely trying to show off. If you compliment others, you are trying to impress them and if you don't you are simply asocial. If you talk much you are an attention seeker and if you do not talk much you are quiet and reserved. If you are unique you are weird and if you are normal you are boring. Apart from these marital affairs or social gatherings there is a long list of such standards even otherwise.

Generally if you like giving gifts to your relatives you want something from them. If you don't, you do not care or think about anyone else other than you. If you eat a lot you are obsessed with eating and if you do not eat much then you are on dieting. If you fall in love by the age of twenty one you are desperate and if you do not, you are probably incompetent to find someone yourself. If you are an extrovert you do not do anything important or intelligent. If you are an introvert you are too much into yourself.

Frankly speaking society's standards are not good always. They will always try to find some fault in you when they are themselves not sure of their own standards and definitions. Most of these people that you will encounter are themselves self centred, profit making individuals who care to apply their mind everywhere possible, even when it is not at all required. It is difficult to find yourself in a world that is so centred around perfection, wherein reality imperfection is what defines all of us perfectly. So just relax, stay the way you are, do not care about the world and live your life as per your own standards.

I am sure even after reading this and arguing with this, you might as well fall in this trap of societal connotations. But do not worry, you are never late to take a step and make a difference in 'Your' life.

As they say, "It is your life, make it large. Life is too short to keep wondering what to do and what not to do. Do it and let the world keep wondering if it was right or wrong or just keep wondering and do not do anything. THE CHOICE IS YOURS."

Ekjot Kaur

A Woman's Heart

A woman's heart is a deep ocean of secrets
and her love is deeper still
the waves can be seen and heard
but still water runs deep.

A woman's heart is a diary for her
where she knows her secrets are safe
A woman thinks from her heart
but her heart is very fragile.

Her heart is like a mirror
if broken, cannot be put together
If put together, the cracks will remain
which will trouble her again and again.

Ekjot Kaur

'T' For Teachers

She comes and goes
Meanwhile she speaks
speaks about some sense
some sense that matters to us
to raise us
educationally
in all aspects
We listen
We understand
We apply
then we
exchange places with them
Now we are them
now we also come and go
we speak
We speak some sense
some sense for others
giving the moral values
the knowledge
to each and everyone
without any selfishness
because
that is how we teach
and this goes on
goes on and on...

Monika Tanwar

Discipline and Freedom

Absolute freedom is in fact a myth. It does not exist and cannot exist either in the physical, social or moral world. In the social order, for instance, the freedom that is enjoyable by an individual should be consistent with the equal freedom of others. The freedom that one enjoys consists in the exercise of his rights as a member of society in any way he chooses and an individual's right implies an obligation on the part of others to respect it, that is not to be deprived him of it or even to hinder him in any way in its exercise. Similarly a pupil's right to engage in any school activity implies that he should not be disturbed by others in any way in the exercise of this right. But a right carries with it a corresponding obligation on the part of others. Rights and obligations are in fact correlative terms each implying the others. Thus the freedom of an individual is necessarily hedged in by the equal freedom of the people among whom that individual lives and works.

As in a nation, so in the socio-economy of the schools, there is a need for law and order. It is necessary that school activities should proceed smoothly to satisfactory conclude without friction between individuals and later hindrance by other factors. If laws and rules are necessary there must be some authority to frame, promulgate and administer to promote the realization of the larger purpose of the school and to make the lives of pupils full and free. For as held by jurists, while law can exist without liberty, liberty cannot exist without law.

Children being what they are by nature, it was no wonder that much of the conscientious teacher's energy and time were expended in keeping order by detection of misbehaviours and infliction of punishment. In fact maintenance of order being of primary importance, more time had to be allowed for correcting faults and administering punishment than for the actual teaching of lessons. This was the character of school disciplining all the world over until a generation ago. Even in the educationally progressive countries of the West. "The Right Law of the school was order, the first task of the teacher was to compel order and the first duty of the pupil was to obey and behave". (Editors Introduction of P.E. Harriss, Changing conceptions of school disciplines, p.11)

The authoritarian method of control is undoubtedly an easy and comfortable one so far as the teacher or the headmaster is concerned. But this form of discipline does not ensure. Permanent results for it seek to treat the symptoms but not cure the disease that produce them. The teacher may be able to impose his will upon his pupils. The teacher may be able to insist upon and enforce obedience, but he does not by this course, touch the inner springs of conduct. For instance, the pupil's eyes and ears may be glued upon the teacher while their minds and hearts are far away. In such cases of enforced attention or others that only wait for the teacher's departure from the class room or ringing of the bell where the dam placed against the natural flow of their energy by the teacher's arbitrary will is easily washed away and disorderliness reigns supreme. This sort of discipline, it is obvious touches only external conduct, and makes of the pupil at best a successful hypocrite. There is no harmony, in fact there is often opposition between the outer conduct and inner desire.

The pupil's personality is psychologically split up into two - the outer one orderly, obedient and "well behaved" under the teacher's eyes and the inner and real one, positively rebellious asserting itself when the teacher, the external censor is away. The discipline involving machine like ordering of conduct leaves no room for the growth of self reliance and self direction in the pupil and he feels

helpless in situations where the external rules are non-existent and the teacher is absent. The pupil's judgement and initiative are crushed out and he is reduced to the position of a marionette who dances only when the strings are pulled by the teacher and otherwise remains inert.

It must be noted that the standard of order is not a matter of abstract principle applicable to all classes and conditions of school alike; and conversely all cases of disorder do not spring from the same cause and cannot be classified and labeled and dealt with by the application of specific remedial treatment of a uniform type in the form of specific penalties. There is indeed no single formula or even combination of formulas for securing and maintaining school order. There are various factors involved - psychological, sociological and biological and they complicate the situation and rule out simple, direct treatment. It has been rightly said that there are no specific remedies of universal applicability in the realms of social ills.

The children of five or seven simply cannot sit still much as the teacher might direct them to do so. They fidget and move, stand up and lean. This behaviour has to be tolerated to some extent as a result of their immaturity and lack of self-control. It has to be even recognized in the programme of school activities and adequate provision be made for free movement.

The standard of order and the methods of control are relative not only to the pupils but also to schools. Schools differ in their traditions, some have a high tradition of orderliness while some others suffer from chronic disorderliness. The physical conditions of work in the school and its surroundings have also a bearing on the question of order as seating arrangements are unsatisfactory; equipment, inadequate light and ventilation poor; and free moving space limited; a high standard of orderliness is difficult to expect.

The teacher's personal qualities, his poise, self-control and self-assurance, his sense of humour and sympathy affect his relations with the pupils and greatly influence the standard of order in his class.

And the last, but certainly not the least important factor of all is the nature and methods of work in which pupils are engaged. They determine in a very large measure the degree of order that prevails in a classroom when pupils are engaged in activities that are honestly attractive and worthwhile in them. To them, when their natural impulses are appealed to and directed towards the work in which they are engaged when each pupil feels that he should contribute to the total outcome in the best way he is capable of the work itself furnishes the motive power and absorbs the pupil's attraction and energy.

Dr. Satveer Singh Barwal
(MVCE Faculty)



Teachers As Counsellors

Counselling is a process that occurs when a client and a counsellor set aside time in order to explore difficulties which may include the stressful or emotional feelings of the client. A relationship of trust and confidentiality is paramount than anything else in counselling. Professional counsellors will usually explain their policies on confidentiality, they may however be required by law to disclose information if they believe there is a risk to life.

When we look at the teacher student relationship as soon as a child enters into the world of education the child is introduced to a human figure called a 'teacher'. Suddenly from being in the care of the mother the child enters the world which has competition, friends creating an altogether different environment. Here is the point from where the journey of relationship starts and a teacher becomes a child's most trusted friend and teaches the child to open the mind to new thoughts, activities and information. That is the very reason there is a true need of compassionate teachers who can act not only as facilitators of education but also guide students for their lives. Because a teacher's job is not only within the four walls of the classroom but is equally responsible for the overall development of the child be it physical, social, emotional, cognitive as well as moral values. This historic nature can be traced back to Socrates where he was involved in teaching and guiding his students. So a true teacher is a counsellor since time immemorial.

The most important attribute of a teacher to be an effective counsellor is his/her sensitivity in identifying students with problems. This is because in school set-up students seldom approach teachers with their problems because they are apprehensive about disclosing their intimate nature of the problem. It is only with serious effort that a sensitive teacher after identifying a student with some problem can establish rapport with the student and make him or her come out with the problem he/she is confronted with. After having understood the nature of the problem, role of the teacher is to help the student use the potential to solve it.

For instance a student Sheela, who according to the teacher is bright and hardworking is not doing well in tests. The teacher senses that there is some problem and opens an intimate dialogue with her. After spending some time, the teacher understands that Sheela becomes anxious about tests and does not sleep well before test commences therefore is unable to do well in tests. The teacher starts with importance of mental health for doing well in general, and in tests especially. Indicating how sufficient hours of sleep are indispensable for performance. Then she goes on to indicate the different ways of relaxing during the ways of tests. From all this the teacher boosts Sheela's morale by pointing on her inherent capabilities by using which she can emerge as a very successful person. It is apparent that in the above situation there are certain attributes in the teacher which makes him/her an effective counsellor. They are-

- keen observer
- sensitive
- empathetic
- objective

Another instance is that a shepherd David had hundred sheep. He took utmost care of the flock. One

stormy night there were only ninety nine sheep. Still then inspite of the weather he left aside those ninety nine and ventured out to look for the lost sheep. The story shows that a teacher has hundred percent responsibility. Even if it is ninety nine percent it is a failure till it is hundred percent.

Another instance, one day in a class it happened that a learner came to the class without doing his homework. The teacher asked him why and the child said that his father came home drunk. In such a situation what role does a teacher have? The teacher should be willing to listen to the learner to make the learner listen to him/her but must be strong enough not to get emotionally involved with the child. A teacher should be able to help the learners to see things more clearly from a different view point for a positive change.

So a teacher is a friend, a guide, a disciplinarian, a philosopher and of course a great teacher as well as a good counsellor.

Ngampamphy Ruivah

Then Who Was I? Now Who I Am!

A little girl with a little heart
little heart full of curiosity
curiosity to know the world
to know the world, I went to school
went to school and found new friends
new friends with the tag of teachers
teachers taught me about the world
I saw the world through their eyes and my eyes
the world was beautiful
I went on to know the world more
then, I went to college
and there I found some new friends
new friends with the same tag of teachers
they helped me to know the world more
I was impressed by the teachers
so I went to become a teacher
to be a teacher I joined B.Ed
my hard work brought me to "MVCOE"
a new surrounding with new friends
they taught me about the qualities of a teacher
I studied hard and applied the law
the law to be a successful teacher
who is going to help others to know their world!
Now, I am a TEACHER!

Monika Tanwar

My B. Ed. Journey

O Allah! Let the knowledge that You have granted me, be beneficial for me, and teach me whatever can be beneficial for me

Out of all the Du'aas that I know related to gaining knowledge this one is my particular favorite. I love this Du'aa because it is so comprehensive. In it, we are praying for all the knowledge that we have gained in the days that have gone by and all the knowledge that we will gain in the days to come. We are asking God to let the knowledge that we have gained so far be beneficial for us and to grant us beneficial knowledge in the future.

Now what is “Beneficial Knowledge”? Beneficial Knowledge is the kind of knowledge that we actually use, knowledge that we apply in our daily lives, knowledge that actually benefits us. In our eighteen to twenty one year-long academic careers, all kinds of knowledge have been bombarded on us. We have been exposed to the sciences, mathematics, social sciences, three different kinds of languages and so on and so forth. But the big question is, how much of the knowledge that we have gained do we actually use? How much of the knowledge that we have acquired truly is beneficial knowledge?

In our B. Ed. programme, we have been exposed to a huge variety of knowledge. As this eventful B. Ed. journey comes to a close, I would like to reflect on the beneficial knowledge that I have gained here in the following points:

1. Flexibility

“A teacher needs to be flexible here...” said my professor. Islam is one of the most flexible religions in the world. Once I was able to reconcile this fact, I easily accepted the idea of being flexible. Now I always think of alternatives to any situation and am more accepting of ways and ideas of people that are different from mine. Islam is my chosen way of life and becoming a teacher is my chosen path of career. How will I be a good Muslim and a good teacher if the ideologies of Islaam and those behind becoming a good teacher are in conflict with each other?

But is that true? I am also doing Bachelors in Islamic studies. In our Fiqh (Islamic law) book I noticed that first the ideal way of doing anything is mentioned and then the exceptions. So basically, in every chapter they state that this is the ideal way but if you are not able to do this then do this or that. And at the end of almost every chapter they mention the Quranic verse “So be conscious of Allaah as much as you are able” [64:16].

2. Reflection

A good teacher is a reflective individual. I attended an online seminar where they discussed how we could make reflection an easy part of our daily routine. We first need to think about what is the goal we want to achieve by becoming a teacher. Then at the end of every class we ask ourselves whether

we were able to achieve that goal in this class or not. If yes, then what worked and if no, then what did not work? The Prophet, peace be upon him, used to encourage his companions to do Muhasabah every night. Muhasabah basically means taking account of your own actions. Thinking about all the good and the bad you did that day and how you can rectify yourself. Reflection is necessary for our professional as well as personal growth.

3. Learning by Doing

B. Ed. has been the best University experience I have had so far because here we actually learn by doing. If they want us to organize the morning assemblies in school, they actually make us conduct morning assemblies here. If they want us to organize co-curricular activities, picnics, trips, sports day, special assemblies, make boards etc. they actually make us do it! And that was the best part of B. Ed. I enjoyed it so much that I would want all my future students to experience the same joy of learning by doing.

4. Respecting the Differences

B. Ed. is a unique course because it brings people from different fields together. Moreover, because of our flexible class groupings and activities we get a chance to interact with almost all the students and teachers. Working together with people who come from different fields of study, a different cultural, religious, social and lingual background, teaches one to respect the differences. We not only come from different fields of study, but we also are in different phases of life. Some of us are fresh University graduates, some just got married and some have children. I have learnt a lot by just interacting with my fellow classmates.

Our B. Ed. batch is so close knit together, we are practically a family. I love how everyone greets each other with a big smile on their faces. I love how we share our food in big communal lunches. I love how if I am absent even for one day everyone asks me where I have been. These are just a few of the many things that I have learnt here. B. Ed. is truly an experience of a lifetime.

Atiya Hasan

How I discovered Quilling

Quilling is an art form that involves the use of strips of paper that are rolled, shaped and glued together to create decorative designs. The paper is rolled, looped, curled, twisted and otherwise manipulated to create shapes which make up designs to decorate greeting cards, pictures, boxes, eggs, and to make models, jewellery, mobiles, etc.

Now a days quilled cards are becoming more popular because one can create his/her own designs in card making just by using paper strips and glue. I have also made some quilled cards on my own. I remember when I first started making these cards. I was pursuing my graduation when I first time saw a quilled card, made by an NCC member for her seniors/farewell. I was very impressed by the

quilling art. I cannot just tell you in words how I felt that time. I felt a warm happiness inside, that there is an art like this that exists and it was so good. So I asked that girl how she had made such a beautiful card. Also I did not know that the technique of making those cards was known as 'Quilling'.

I searched on Google typing different names to search those cards. Finally I got to know that these cards were called as quilled cards. So I started looking for various tutorials on You Tube on how to make a quilled card. It helped me a lot and I started making those cards. I got appreciated by my friends and I made several cards for my friends also. Making quilled cards is really a hobby for me now. Along quilled cards paper jewellery can be made through. This technique I really enjoy making these cards and I am looking forward to start making handmade cards as my own business.



In B.Ed also, I made lot of things through Quilling technique during my work experience classes. Quilling as an art form can be taken up as the vocation by students as well.

Life has so much in it. We do not know at what times we can find our own passion, but one should not give up hope. Rather enjoy life to its fullest because may be what we are looking for is in front of our eyes. We just have to give things a try.

Monika Tanwar

Educational Gathering (2014-2015)

The Educational Gathering is an every year activity of the college which gives an opportunity to students and teachers to dedicate a day, getting together in groups to discuss and reflect upon a particular issue in-depth. This year also it was organized on 17th April 2015, Friday. This time the topic of the gathering was 'Reflective Practices in Teacher Education'. John Smyth's paper on 'Reflective Practices in Teacher Education', retrieved from Australian Journal of Teacher Education Vol. 18, Issue-1, 1993, was taken up as a core reading for everyone (students and teachers) to have a ground to start the discussion. The work of selection of excerpts from the paper and translation to Hindi was done in advance by a team of students: Ann Susan, Malvika, Princy and Nikita Goel; Geetanjali, Pankaj and Jaynath respectively. The day before the gathering i.e. on 14th April 2015, the paper having excerpts was made available to all the students and teaching faculty in Hindi and English. The areas covered in this paper were: Why is there interest in reflective approaches now? ; What is to be gained from this approach? ; What are some of the advantages? and What are the drawbacks?.

The programme of this Educational Gathering started at 9:30 am with the Key Note address by Dr. Sushil Dhiman who threw light on the important areas of this theme. Dr. Dhiman started the key note address with a beautiful thought-'An unexamined life is not worth living', which in itself puts

emphasis on the importance of reflection in everyone's life. By referring to what has been expected from the teachers as per NCF 2005, RTE Act and numerous tasks (like being updated with changing discipline and pedagogical knowledge; expectations of students, parents and society, assessment, guidance and counselling...etc) a teacher needs to do simultaneously, Dr. Dhiman highlighted the need of being reflective practitioner. She said that reflective practitioner means one who is critical thinker, everyday problem solver, relates present with past and future and maintains intellectual curiosity.

This was followed by group discussions from 10:30 am to 1:30 pm in eight groups consisting of students and teaching faculty of the college. The groups were asked to identify a student coordinator to facilitate participation of all group members and for the smooth conduct of the discussion and two reporters to report the whole discussion in Hindi and English. Each group was expected to discuss diverse issues and aspects emerging from this theme in the light of the paper and what they experienced in their writing of reflective journals which they maintained during SEP (School Experience Programme).

The reading material had questions to facilitate the dialogues in respective groups. The discussions concluded at 1.30 p.m. After a break of one hour for lunch and consolidation of the recorded notes by both reporters of each group, the session of presenting the reports started at 2:30 pm. The report of each group presented a spectrum of beautiful and enlightening thoughts on the topic and truly depicted the rigor of the discussion that happened in each group. The important points that emerged in totality from the presentations were:

Reflection:

- To think about what we do and its affect on teaching-learning and the ability to think on what, why and how of the actions
- Involve in-depth thinking, incorporating the questions what was right and what went wrong and how things can be made better.
- It could be planned activity or can occur sub-consciously.
- It could be on action and in the action.

Factors: The factors which influence the reflection process are past experiences and perspective of the person but ironically it shapes the perspective too.

Importance of reflective practices for teachers:

- Helps in curriculum development
- Makes the teachers analyze their doings i.e. help in taking informed and rational steps.
- Helps in problem solving and identifying our limitations and strengths
- Helps in uplifting the self-esteem, morale and self-responsible attitude in teachers.
- Grooms the personality of the teacher
- Breaks the stereotypes, misconceptions and wrong assumptions about different areas of education
- Helps in making maximum utilization of available resources

- Makes the decision more valid, authentic, reasonable and with minimum error.
- Booms the domain of creativity.
- It is a way to mental well-being, and to become sensitive and intellectually strong.
- Reflection by teachers develops habit of doing reflections in their students also as such teachers would provide scope for the same in their classes.
- Issues on which reflection needs to be done by the teachers should not be limited to the classroom but in broader sense to the different domains of society.
- There are many issues in Indian context on which teachers can reflect to make the Indian education system effective, like: Conflict between making the student get 100% marks or job ready or good human being; new tools of pedagogy; how to make blend of theory and practice; and mushrooming of private coaching centers...etc.
- Ways to make reflection process more effective:
 - Should be goal oriented and meaningful
 - Should involve critical evaluation of self also
 - In education system it should be collective and collaborative effort
 - Good and detailed observation of the situations.
 - Should be knowledge oriented rather than information oriented
 - Documentation holds utmost importance so write-ups should be maintained in the form of reflective journals.
 - Most of the time reflection process doesn't make its complete sense as we get victim of our biases.
 - During SEP peer observations also become important parts of reflection.
 - Reflective journals are important domain of teacher education programme as it helps in keeping record of different reflections and to perceive the link and growth in different thought processes and their influence on the teaching and learning. Reflective journal helps in realizing the essence of SEP.

At the last valedictory session at 4:30 pm made the gathering tie up different thoughts on this topic - 'Reflective practices in teacher education' in beautiful manner. The valedictory session was addressed by Dr. Manjari Gopal, who was in active touch with all the eight groups during the discussion session. Her visits to all the groups made her to take realistic picture of what had been discussed by each group and how diverse and enriching was the discussion session. Dr. Manjari started the session by congratulating the whole college to make this gathering a real success and especially to the efforts of the organizing committee of Dr. Neelam Mehta Bali, Ms. Meenakshi and Ms. Anjana. She applauded each group for their zeal to attempt their best to synthesize ideas on this topic and acknowledged how each group handled depth and complexity of the topic differently and beautifully. She highlighted the reflective nature of different tasks taken up throughout the B.Ed. programme particularly during SEP. She concluded her words with the statement that 'Reflection on the action, in the action and for the action, all are important for the teachers as these would help them to play their role effectively in developing dynamic and evolving society'.

Dr. Neelam Mehta Bali

Ms. Anjana
(MVCE Faculty)

Is Corporal Punishment The Last Resort ?

The issue of corporal punishment is closely tied with how children and childhood have been conceptualised by the society historically. In the eighteenth century, English philosopher John Locke wrote that a young child is a *tabula rasa*, a “blank slate” on which the society writes. It is thus up to the adults as to what they make of the child. This understanding combined with primitive notions of children as being inherently bad and 'born of sin' led to a hegemonic relationship between adults and children rife with patronage and control.

In the nineteenth century, the changing attitude towards the treatment of offenders was reflected in educational theory. Jean Jacques Rousseau was the most revolutionary in his belief that children are born with their own positive natural tendencies and develop those unless corrupted by a repressive society. Rousseau felt that children learn right and wrong through experiencing the consequences of their acts rather than through physical punishment, an understanding that most of the other educational philosophers across the globe such as Pestalozzi, Herbert and Froebel advocated.

In the similar vein Paulo Freire, a Brazilian critical educator of the twentieth century, opposed the 'banking concept of teaching' as it encourages oppressive interactions between teachers and students. Teachers using 'banking concept of teaching' do nothing other than deposit inert, objective facts into students' minds without teaching them to think, challenging them to struggle against power structures and liberating them from their oppressed states. This forces students to remain in their lower class positions thus suppressing their creative power and ability to bring real social transformation. Freire calls this as the 'pedagogy of the oppressed'. Education should raise the awareness of students so that they become subjects, rather than objects, of the world (conscientisation). This is done by teaching students to think democratically and continually question and make meaning from (critically view) everything they learn. Freire states “...our relationship with the learners demands that we respect them and demands equally that we be aware of the concrete conditions of their world, the conditions that shape them....Humility helps us to understand this obvious truth: No one knows it all; no one is ignorant of everything. We all know something; we are all ignorant of something.” So teachers must have humility, coupled with love and respect for their students.

The Indian educational philosophies have also been propagating that children should not be treated as 'empty vessels' who can be moulded as and when desired. Subjecting children to corporal punishment in the name of 'disciplining' is purely misleading. Discipline involves self control, not submitting to the will of another person. Self-discipline is never based on force, but develops from understanding, mutual respect and tolerance. Emphasizing on self-discipline, Rabindranath Tagore expressed, “I never punished them myself....They are free from 'dos' and 'don'ts'... From the very first day I trusted them and they always responded to my trust...” Tagore believed in discipline through self-government.

According to Sri Aurobindo, freedom is the real discipline and discipline is ultimately spiritual. The

fact that those parents , teachers and other adults have to repeat corporal punishment for the same misbehavior by the same child testifies to its ineffectiveness. Infact Aurobindo's philosophy of integral education rules out harsh treatment, scolding or being angry towards the children. Believing that child is a human being first, he strongly counters use of any kind of force in discipline.

Mahatama Gandhi's principle of non-violence has ever opposed exploitation of children in education system. Aiming at character building and evolving democratic ideals through education, M.K.Gandhi propagates that school as a miniature society should help in learning virtues of sympathy, service, love , liberty, brotherhood, etc. Patronizing freedom of children, R.N. Tagore rebukes those teachers as 'born tyrants' who show superiority and try to burden the children with their grown-up manners thus hurting the minds of the students unnecessarily.

For years, the educational philosophies in the Indian context have been professing a punishment-free education system where child has 'agency' in his/her own learning. The teacher education programmes across India assert the agency of the child but the same is found to be silenced by the rod in the name of 'control' and 'discipline' frequently. Inconsistencies such as these expose the chasm between what is preached and what is practiced. Thus schools have been identified as the main sites where corporal punishment has assumed endemic proportions and steps should be taken to banish it as punishing children is not at all a last resort.

**Ms. Meenakshi Chawla
(MVCE Faculty)**

The Other Perspective

The B. Ed. programme of Delhi University is not a part of the teacher-like-objects sprouting machine. In a time when education has become commercial rather than being considered the most valuable possession, an art- the Delhi University's Teacher Training Program is striving hard to stand upright and be the sole institution to provide to the Indian society some quality educators. It is honored with the responsibility of shaping such educators for whom providing education is not just a means of earning money but is valuable like an art form. The custom of teaching is handled with immense dedication and whole-heartedness.

Since time immemorial, imparting education has always been the most prioritized task. The responsibility was bestowed on a selected few who thereon carried it forward making it the goal of their lives. But somehow today, amongst the horde of creating mechanically identical products, a specialized education with a personalized touch is somewhat getting vanished from the scene. So the responsibility and the current duty of teaching at education institutions becomes even grave and is the call of the hour.

The teacher education programme that spans roughly over a period of ten months is a rigorous programme to develop such human beings who are willing enough to adapt to changes and innovations, are bold enough to carry the responsibility of building future citizens, and yet are tender enough to have that softness with which they can mould a child. Here at Maharshi Valmiki College of

Education, we the students were made aware of and familiarized with all these aspects of teaching when the very first day we were given our new designation- 'A Pupil Teacher'. The next few months were a role swapping time for us, aspiring teachers, when some of the days we learnt how to be a facilitator and other days we were actually involved in the formal-teaching learning process as teachers.

The ideology inculcated in us is such that we involve ourselves and direct our behavior and actions to create a holistic being by means of imparting education. Each one of us coming from different streams was now here as a group to learn the nuances of being a teacher and understand the significance of a facilitator and the ever important central role of a learner, so that we could carry it forward as participants of the formal teaching-learning system.

B.Ed. being a professional course involves the training of future teachers wherein the curriculum itself has been devised such that a considerable amount of priority has been given to the practical component and the application of theoretical knowledge and skills in the actual situation. This has been achieved by inclusion of school teaching, or more precisely known as the School Experience Program which continues for a duration of around three months. Now there awaits a whole complex procedure which deals with the intricacies and all kinds of arrangements to be made regarding attaining this practical knowledge of teaching. Over a period of three months, forty days are allotted to school experience. Pupil teachers for these forty days step into the shoes of professional teachers in their respective allotted schools. The procedure starts with allocating schools to pupil teachers where they will start their first practice of teaching under expert supervision. The foremost motive is to organize a workplace condition for trainee teachers, to ensure their grooming, to familiarize them with the nuances of teaching learning process and the resultant education system in India.

The formal teaching started in September where we were each given one class for each of our teaching subjects. We were supposed to take up two classes daily. The teaching content was decided before hand. The content of the class was intricately planned keeping in mind the best transaction of lessons to the students for their understanding. Given the modern and present day scenario, education is not imparted but is derived and constructed. The strict flow of education from the learned to the learner has now been made flexible to smoothly include the active participation of the learner.

With the growing importance of a child's abilities and the basic self calibre of the learner, it is now important that teaching is not just teacher-centric but is student-friendly. It is designed in such a manner that learner finds immense scope for his or her actual development in applying the concepts which are learnt. In order to necessitate this necessary and sufficient condition an important aspect of lesson planning for pupil teachers was the inclusion of appropriately creative and useful teaching learning material. This teaching learning material can be used either by the teacher directly or be devised in a way to be used by students to have a firsthand experience. With this in our training to be a teacher, we were taught to mould and accommodate our practices as per the work culture in the schools currently prevailing in India. As per the National Curriculum Framework 2005, all the schools in India are to make a shift from teacher-centric learning to child-centered leaning. The result of which has been a great evident revolutionary change in the pattern of teaching. So we were

supposed to design activities, learning games, working models or inquiry models, use innovative pedagogies like role play, poster making, group discussion, excursions, debates, quiz and many more. As guaranteed by NCF 2005, the result of their usage was stupendous! Classroom teaching was no longer boring and monotonous. Students were active participators and were actually knowledge builders.

Most importantly the purpose of learning was bringing about the desired change in their behaviors and thought processes. Standing at the end of successfully completing my teaching practice, I can undoubtedly say that the approach of teaching adopted was the most appropriate and efficient to create future generation of a developing country like India.

Another aspect of the teacher education programme was for us to understand the significance of the institution we will be working in as teachers and in the process realizing the value of our presence. We were made clear about the symbiotic relation between a teacher and the institution where we were supposed to be teaching. So this aspect comprised of fulfilling all the aforesaid responsibilities of a teacher as a member of the staff of an institution. It included utilizing one's leadership, cultural, aesthetic, linguistic and organizational qualities.

The school experience programme was a reflective mirror image of the realities that existing in the Indian society. Though many schools have begun with a shift to learner centric and participatory teaching-learning process, there still needs to be addressed a lot of issues including the implementation of policies. The experience that we were exposed to and gained was one of its kind and most importantly helped us groom ourselves and realize the ever increasing emergence of the current education system.

Shaagun Puri

اقوالِ زریں

- شبینہ پروین
بی ایڈ

(وقت)

- ☆ وقت ایک قیمتی سرمایہ ہے اسے بیکار ضائع کرنے والا دنیا کا سب سے بڑا بے وقوف ہے۔
- ☆ وقت کی قدر کرو خدا معلوم یہ کب اور کس طرح ہمارے ہاتھوں سے نکل جائے گا۔
- ☆ وقت کو عقلمندی سے صرف کرو۔
- ☆ وقت کی پابندی کامیابی کی ضمانت ہے۔
- ☆ ہر پل کی اہمیت پہچانئے، اسی میں کامیابی کا راز پوشیدہ ہے۔

جھوٹ

- شبینہ پروین
بی ایڈ

یہ وہ گندی گھناونی اور ذلیل عادت ہے کہ دین اور دنیا میں جھوٹے کا کوئی ٹھکانا نہیں ہے۔ جھوٹا آدمی ہر جگہ ذلیل ہوتا ہے۔ ہر مجلس اور ہر انسان کے سامنے بے اعتبار ہو جاتا ہے اور یہ اتنا بڑا گناہ ہے کہ اللہ تعالیٰ نے قرآن مجید میں اعلان فرمایا ہے کہ کان کھول کر سن لو جھوٹوں پر خدا کی لعنت ہے اور وہ خدا کی رحمتوں سے محروم کر دئے جاتے ہیں۔ ہر مسلمان مرد عورت پر فرض ہے کہ اس لعنتی عادت سے زندگی بھر دور رہیں۔

غور طلب ہے

- شبینہ پروین
بی ایڈ

غصہ	پینے کے لئے کوئی چیز ہے تو
سچ	کہنے کے لئے کوئی چیز ہے تو
رحم	دکھانے کے لئے کوئی چیز ہے تو
دل	جیتنے کے لئے کوئی چیز ہے تو
دماغ	پرکھنے کے لئے کوئی چیز ہے تو
غم	کھانے کے لئے کوئی چیز ہے تو
علم	لینے کے لئے کوئی چیز ہے تو
غرور	چھوڑنے کے لئے کوئی چیز ہے تو
صبر	کرنے کے لئے کوئی چیز ہے تو
دان	دینے کے لئے کوئی چیز ہے تو

خدا دیکھ رہا ہے

- عائشہ پروین

بی ایڈ

میں جو حکایت لکھ رہی ہوں، اس کو پڑھ کر آپ سمجھ جائیں گے کہ ہم کوئی کام کتنا ہی چھپا کر کریں مگر خدا سے نہیں چھپا سکتے۔

آپ اپنے ماں باپ، اپنے استاد، اپنے دوست احباب سے بھلے ہی کوئی کام چھپا سکتے ہیں مگر خدا سے نہیں۔ حضرت جنید بغدادی ایک بہت بڑے بزرگ گزرے ہیں۔ آپ کے بہت سے مرید تھے، مگر ایک مرید کی طرف وہ زیادہ متوجہ ہوئے تھے۔ کچھ لوگوں کو یہ برا لگا اور حضرت سے پوچھا، اس مرید میں ایسی کیا خاص بات ہے جو اس پر آپ بہت مہربان رہتے ہیں۔ حضرت نے فرمایا میرا مرید ادب اور عقل میں تم سب سے زیادہ بڑا ہے۔ اس لئے میں اسے بہت چاہتا ہوں۔ لوگوں نے کہا، آپ ایسا کیسے کہہ سکتے ہیں۔ میں تمہیں دکھاتا ہوں تاکہ تمہیں معلوم ہو جائے کہ اس میں کیا خصوصیات ہے۔ آپ نے ہر مرید کو ایک بکری اور گھاس دی اور فرمایا کہ ایسی جگہ ان بکریوں کو گھاس کھلاؤ جہاں کوئی دیکھنے والا نہ ہو۔ چنانچہ سب گئے اور پوشیدہ جگہوں میں ان بکریوں کو گھاس کھلا کر لے آئے، مگر وہ مرید جو حضرت کے قریب تھا بکری کو بنا گھاس کھلائے واپس لے آیا۔

حضرت نے پوچھا کہ تم نے بکری کو گھاس کیوں نہیں کھلایا؟ تو بولا حضور میں جس بھی جگہ پہنچا وہاں اللہ تعالیٰ دیکھنے والا موجود تھا۔ اس لئے میں اسے بغیر گھاس کھلائے واپس لے آیا۔ دیکھو یہ اس کا وصف خاص جس کی وجہ سے میں اسے بہت چاہتا ہوں۔

سبق: دیکھا آپ نے اگر ہم سب اس بات پہ صحیح معنوں میں یقین کر لیں کہ اللہ تعالیٰ ہر جگہ ہمارے کام کو دیکھ رہا ہے تو ہم بھی کوئی گناہ نہ کریں۔

माں

- عائشہ پروین
بی ایڈ

- ☆ ایک خوشبو ہے جس سے جہاں مہکتا رہتا ہے۔
- ☆ ایک ایسا پیڑ جس کے نیچے بیٹھنے سے زندگی بھر کی تھکن دور ہو جاتی ہے۔
- ☆ ایک آہ ہے جو سیدھی عرش پر جاتی ہے اور جس کے قدموں کے نیچے جنت ہے۔
- ☆ ایک مثال ہے جو سیدھی راہ دکھاتی ہے۔
- ☆ ایک نغمہ ہے جس کی گونج زندگی کا احساس دلاتی ہے۔

ہم نصابی سرگرمیاں

(Co-Curricular Activities)

-محمد آفاق

بی ایڈ

تعلیم کی اہمیت اور اس کے اغراض مقاصد کا دارومدار ہم نصابی سرگرمیاں (CCA) پر ہے، تعلیم ایک وسیع معنی کا لفظ ہے جس کے اندر تمام تر تفہیم مضمحل ہے۔ مثلاً روشن خیالی، طرز سخن، اعلیٰ و ادنیٰ عروج و زوال، شفقت و محبت اور جذبہ احترام وغیرہ۔ لیکن سرکاری اسکول اس کام سے دست بردار ہوتے جا رہے ہیں جس کی وجہ سے باادبی کی بجائے بے ادابی بڑی تیزی سے پھیل رہی ہے، دور قدیم میں ہم نصابی مشاغل پر زیادہ زور نہیں دیا جاتا تھا بلکہ اس دور میں ہم نصابی مشاغل کے لئے غیر درسی مشاغل کی اصطلاح رائج تھی کیونکہ مدرسے کے اندر صرف نصابی تعلیم کا بندوبست ہوتا تھا۔

ہم نصابی سرگرمیاں تعلیم کی روح ہیں۔ جس سے آپ تقویت پا کر تعلیمی زندگی کو ایک نیا زاویہ دیتے ہیں جدید دور میں صرف درجہ کے نصاب کے اختتام تک ہی تعلیم محدود نہیں ہے بلکہ ہمیں نئی نئی تکنیک اور زاویے اختیار کرنے پڑیں گے۔ جس سے تعلیم میں بچوں کی دلچسپی کا اضافہ ہو اور بچہ ہم نصابی سرگرمیوں کے ذریعے تعلیم کو موثر بنا سکے مثلاً اگر ہم سماجی علوم میں پارلیمنٹ کی تدریس کر رہے ہیں تو پارلیمنٹ کی تصویر دکھا سکتے ہیں۔ اس کے بعد موقع ملتے ہی طلباء کو پارلیمنٹ ہاؤس لے جانا زیادہ سود مند ثابت ہوگا اس طرح تاریخی مقامات کی سیر اور تہذیبی سرگرمیاں ان



کے فکری سانچے کو تبدیل کرنے میں اہم کردار نبھاتی ہیں یہ ان کے ذہن کو کشادہ کرتی ہیں ان کے لئے نئی راہیں استوار کرتی ہیں اور اپنے خیالات و جذبات کو پیش کرنے پر آمادہ کرتی ہیں ہم نصابی سرگرمیوں کا ایک اہم مقصد طلباء میں خود اعتمادی پیدا کرنا ہے، اس کے علاوہ طلباء میں سماجی شعور اور شہریت کا شعور بھی پیدا کرتی ہیں۔

ہم نصابی سرگرمیاں ہی بچوں میں سماجی شعور پیدا کرنے کا واحد ذریعہ ہے مثلاً جب طلباء کھیل کے لئے ٹیم کے ساتھ دیگر مقامات پر جاتے ہیں یا پھر معاشرے میں مختلف پروگراموں کے لئے گھومتے پھرتے ہیں۔ جس سے ان کے معاشرے کی دیگر شخصیات سے میل ملاپ ہوتا ہے اور ان میں سماجی شعور پروان چڑھتا ہے۔ ہم نصابی تعلیم کا اہم مقصد بچوں کو ایسی معلومات، عادات، رجحانات سے آراستہ کرنا ہے جس سے وہ مستقبل میں اچھے شہری بن سکے اور اچھا شہری ہونے کے ناطے ایمان داری اور دیانت داری کے جذبہ سے سرشار ہوں وہ قانونی احکام کی حفاظت کر سکیں اور ہمارے جمہوری نظام کو تقویت پہنچانے کے قابل بن سکے۔

ہم نصابی سرگرمیوں کے ذریعے طلباء کی نفسیاتی ضروریات کی تسکین کی جاتی ہے۔ طلباء کے جذبات اور رجحانات کو صحیح ڈھانچے میں ڈھالا جاسکے ورزش و جسمانی بالیدگی کو بہتر بناتی ہیں اس کے ذریعے اچھے اوصاف پیدا ہوتے ہیں طلباء ہر کام میں نظم و ضبط کا خیال رکھتے ہیں فرد اور گروہ کے باہمی ربط پر بھی معاشرے کے اندر مضبوط عمارت کی بنیادیں پڑتی ہیں۔

تعلیمی اداروں میں نصابی موضوعات مسلسل پڑھنے سے طلباء میں اکتاہٹ اور تکان کے آثار نمودار ہونے لگتے ہیں جس کا ازالہ ہم نصابی سرگرمیوں کے ذریعے ہی ممکن ہے۔ اس کو اپنا کر ہم طلباء میں دلچسپی و انہماک کو بڑھا سکتے ہیں۔ یہ نئی قوت پیدا کرنے میں مدد کرتی ہیں۔

الغرض ہم نصابی سرگرمیاں طلباء کو چست درست رکھنے اور یکسوئی کے ساتھ علم حاصل کرنے کی طرف راغب کرتی ہیں یہ مثبت قوت پیدا کرنے کا اہم ذریعہ ہیں دوسرے لفظوں میں نصابی

سرگرمیاں، نصابی تعلیم کی تجربہ گاہیں ہیں۔ جس کو استعمال کر کے تعلیم و تعلم کو نئی بلندیوں تک پہنچایا جاسکتا ہے۔

ہندی سے ترجمہ
خالد صاحب سے شکریہ کے ساتھ

غزل

محمد رضا
بی ایڈ

خستہ دل ہوں نہ ہمیں اور ستانا لوگو
ذکر اس کا نہ زباں پر کبھی لانا لوگو
لوگ کہتے ہیں کہ اب بھول بھی جاؤ اس کو
اتنا آسان نہیں خود کو مٹانا لوگو
دور تک پھیل گئی بات ہماری اس کی
کل لکھا جائے گا ایک اور فسانہ لوگو
خود کو مشکل سے سنبھالا ہے بہت ٹوٹ گئے
ہم بکھر جائیں گے نہ ٹھیس لگانا لوگو
عمر بھر کے لیے بے چین یہ کر دیتا ہے
میری مانو تو کبھی دل نہ لگانا لوگو

امتحان صاحب

سہیل الرحمن

بی ایڈ

پھر امتحان صاحب تشریف لا رہے ہیں
انجام جانے کیا ہو سب تھر تھر رہے ہیں
غصہ سے لال آنکھیں ماتھے پر سیکڑوں بل
ایک بار جو بھی دیکھے مچ جائے دل میں ہلچل
پھر امتحان صاحب تشریف لا رہے ہیں
کچھ رو رہے ہیں بچے کچھ مسکرا رہے ہیں
کچھ تو بہت خوشی سے کرتے ہیں خیر مقدم
کچھ اپنے دل ہی دل میں کرنے لگے ہیں ماتم
پھر امتحان صاحب تشریف لا رہے ہیں
پڑھنے میں سال بھر سے ہم دل لگا رہے ہیں
اے امتحان صاحب ہم سے خفا نہ ہونا
ورنہ پھر ایک برس تک ہم کو پڑے گا رونا

غزل

محمد رضا

بی ایڈ

رخ سے فطرت کے حجابات ہٹا دیتا ہے
 آئینہ ٹوٹ کے پتھر کو صدا دیتا ہے
 عظمتِ اہلِ وفا اور بڑھا دیتا ہے
 غم ہمیشہ ہو تو پھر غم بھی مزہ دیتا ہے
 دل ڈھرتا ہے تو ایک پل سونے نہیں دیتا
 نیند آتی ہے تو احساس جگا دیتا ہے
 تم نے شاید کبھی اس بات کو سوچا ہوگا
 وقت ہاتھوں کی لکیروں کو مٹا دیتا ہے
 اپنے کردار پر موجوں کو بھی شرم آتی ہے
 جب کوئی ڈوب کر ساحل کا پتہ دیتا ہے
 جو میرے قتل میں شامل تھا نہ جانے کب سے
 آج وہ بھی مجھے جینے کی دعا دیتا ہے
 غم کی دولت بھی سب کو نہیں ملتی رضا
 یہ وہ نعمت ہے جو مشکل سے خدا دیتا ہے

ਮੇਰੀ ਉਡਾਣ

ਮੈਨੂੰ ਉਡਣ ਲਈ ਕਿਸੇ ਏਅਰਵੇਜ਼ ਦੀ ਲੋੜ ਨਹੀ,
ਮੇਰੇ ਤਾਂ ਖੁਆਬਾਂ ਨੂੰ ਹੀ ਖੰਭ ਲੱਗ ਗਏ ਹਨ ।
ਪਰ ਅਜੇ ਇਹ ਖੁਆਬ ਅਤੇ ਖੰਭ ਦੋਵੇਂ ਹੀ ਛੋਟੇ ਹਨ,
ਇਹਨਾਂ ਦੇ ਵੱਡੇ ਹੋਣ ਤੱਕ ਮੈਨੂੰ ਬਹੁਤ ਦੂਰ ਤੱਕ ਤੁਰ ਕੇ ਜਾਣਾ ਹੈ....

ਉਦੋਂ ਹੀ ਇਹ ਖੰਭ ਵੱਡੇ ਹੋਣਗੇ,
ਤੇ ਮੈਂ ਅੰਬਰਾਂ ਨੂੰ ਛੂਹ ਜਾਣਾ ਹੈ
ਮੈਂ ਛੋਟੀ ਸੀ ਜਦੋਂ ਤੁਰਨਾ ਸ਼ੁਰੂ ਕੀਤਾ,
ਮੇਰੇ ਮਾਂਪਿਆਂ ਮੈਨੂੰ ਹੌਸਲਾ ਦਿੱਤਾ ।
ਥੋੜੀ ਹੋਰ ਵੱਡੀ ਹੋਈ ਤਾਂ ਇਹ ਖੰਭ ਫੜਫੜਾਉਣ ਲੱਗ ਪਏ,
ਇੰਝ ਲੱਗਿਆ ਮੈਂ ਉਡਣ ਲਈ ਤਿਆਰ ਸੀ,
ਪਰ ਬਹੁਤ ਜ਼ੋਰ ਦੀ ਡਿੱਗੀ ਤਾਂ ਇਹਸਾਸ ਹੋਇਆ
ਕਿ ਅਜੇ ਤਾਂ ਇਹ ਹਲਚਲ ਦੀ ਸ਼ੁਰੂਆਤ ਸੀ

ਜਿੱਥੇ ਖੜੀ ਹਾਂ ਅੱਜ, ਇਹਬੇ ਮੇਰੇ ਖੰਭਾਂ ਨੂੰ ਨਵੇਂ ਚਾਹ ਮਿਲੇ,
ਸਾਬ ਨਵੇਂ ਲੋਕਾਂ ਦਾ, ਜੋ ਅੱਜ ਮੇਰਾ ਹਿੱਸਾ ਹਨ,
ਅਤੇ ਕਈ ਨਵੇਂ-ਅਨੋਖੇ ਰਾਹ ਮਿਲੇ ।

ਇਹਨਾਂ ਰਾਹਾਂ ਉੱਤੇ ਚਲਦੀਆਂ ਕਈ ਰੰਗ ਦੇਖ ਲਏ ਹਨ,
ਇਹਨਾਂ ਰਾਹਾਂ ਉੱਤੇ ਚਲਦੀਆਂ ਕਈ ਢੰਗ ਸਿੱਖ ਲਏ ਹਨ ।
ਹੁਣ ਜ਼ਿੰਦਗੀ ਨਾਲ ਬੜਾ ਅਪਨਾਪਨ ਲੱਗਦਾ ਹੈ,
ਕਿਉਂਕਿ ਇਹ ਖੰਭ ਉਡਾਰੀ ਭਰਣ ਲਈ ਤਿਆਰ ਹੋ ਰਹੇ ਹਨ ।

ਮਹਿਨਤ ਕਰਨਾ ਹੁਣ ਸਿੱਖ ਰਹੀ ਹਾਂ,
ਇਹਨਾਂ ਖੰਭਾਂ ਦੀ ਉਡਾਰੀ ਦੀ ਕਹਾਣੀ ਵੀ ਲਿੱਖ ਰਹੀ ਹਾਂ ।
ਹੁਣ ਲੱਗਦਾ ਹੈ ਜਲਦੀ ਹੀ ਉਡਾਰੀ ਭਰਾਂਗੀ,
ਜ਼ਿੰਦਗੀ ਦੇ ਹਰ ਰੰਗ ਨੂੰ ਆਪਣੇ ਨਾਂ ਕਰਾਂਗੀ ।

ਕਿਉਂਕਿ,
ਹੁਣ ਮੈਨੂੰ ਉਡਣ ਲਈ ਕਿਸੇ ਏਅਰਵੇਜ਼ ਦੀ ਲੋੜ ਨਹੀ,
ਮੇਰੇ ਤਾਂ ਖੁਆਬਾਂ ਨੂੰ ਹੀ ਖੰਭ ਲੱਗ ਗਏ ਹਨ ।

ਜਸਕੀਰਤ ਕੌਰ ਭਾਟੀਆ

ਸਮਾਂ

ਨਦੀ ਕਿਨਾਰੇ ਆਓਗੇ ਤਾਂ ਰੇਤ ਮਿਲੇਗੀ,
ਬਾਗ-ਬਗੀਚੇ ਜਾਓਗੇ ਤਾਂ ਮਿਲਣਗੇ,
ਜੀਵਨ ਵਿੱਚ ਹਰ ਚੀਜ਼ ਹੈ ਮਿਲਦੀ,
ਪਏ ਸਮਾਂ ਦੁਬਾਰਾ ਨਹੀਂ ਮਿਲਦਾ ॥

ਮੁੱਲ ਪਛਾਣੋ ਸਮੇਂ ਦਾ,
ਇਸਦੇ ਸੁਰਾਂ ਨਾਲ ਆਪਣੇ ਗੀਤ ਸਜਾਓ,
ਜੇ ਲੱਗਦਾ ਹੈ ਔਖਾ ਸਮੇਂ ਨਾਲ ਤੁਰਨਾ,
ਤਾਂ ਆਪਣੀ ਗੱਡੀ ਦੇ ਗੇਅਰ ਵਧਾਓ॥

ਸਮੇਂ ਨਾਲ ਤੁਰਦਿਆਂ ਜੇ ਥੱਕ ਜਾਓ,
ਤਾਂ ਯਾਦ ਕਰੋ ਉਸ ਮੁਰਗੇ ਨੂੰ,
ਜਿਹੜਾ ਸਮੇਂ ਨਾਲ ਦਿੰਦਾ ਹੈ ਬਾਂਗ ॥
ਸਮੇਂ ਦਾ ਪੱਲਾ ਫੜ ਕੇ,
ਜੇ ਤੁੱਸੀ ਸੋਣਾ ਚਾਹੋ,
ਤੇ ਭੁੱਲਣਾ ਨਾ ਕਿ ਰੱਬ ਵੀ
ਕਰਮ ਕਰਨ ਵਾਲੇ ਦੇ ਹੈ ਨਾਲ ॥

ਏਕਜੋਤ ਕੌਰ

ਨਾਰੀ ਦੀ ਆਤਮਰਕਸ਼ਾ

ਨਾ ਰੋਕੋ ਉਸਨੂੰ ਪੜ੍ਹਨ ਦਿਓ,
ਨਾ ਬੰਨੋ ਇਸਨੂੰ ਵੱਧਣ ਦਿਓ,
ਪਤਨੀ ਹੋਵੇ, ਮਾਂ ਵੀ ਹੋਵੇ,
ਹਰੇਕ ਪਉੜੀ ਚੜ੍ਹਨ ਦਿਓ ।

ਨਾ ਦੱਬੋ ਇਸਨੂੰ ਪੜ੍ਹਨ ਦਿਓ,
ਨਾ ਬੋਲੋ ਇਸਨੂੰ ਲੜ੍ਹਨ ਦਿਓ ।
ਅੰਬਰਾਂ ਨੂੰ ਵੀ ਛੂਹ ਲਵੇਗੀ,
ਕੁਝ ਤਾਂ ਇਸਨੂੰ ਉਡਣ ਦਿਓ ।

ਨਾ ਟੋਕੋ ਇਸਨੂੰ ਹੱਸਣ ਦਿਓ,
ਨਾ ਛੋੜੋ ਇਸਨੂੰ ਵੱਸਣ ਦਿਓ ।
ਸਭਨਾਂ ਦੀ ਵੀ ਇਹ ਸੁਣੇਗੀ,
ਆਪਣੀ ਤਾਂ ਇਸਨੂੰ ਕਹਿਣ ਦਿਓ ।

ਚੱਲਣ ਤੇ ਚੱਲ ਪੈਂਦੀ ਹੈ ਵਿਹ
ਰੋਕਣ ਤੇ ਰੁੱਕ ਜਾਂਦੀ,
ਆਪਣੀ ਮੰਜਿਲ ਕਰੇਗੀ ਹਾਸਿਲ,
ਕੁਝ ਤਾਂ ਇਸਨੂੰ ਕਰਨ ਦਿਓ ।

ਸੌਂਦੇ ਜੱਗ ਵਿੱਚ ਜਾਗੇਗੀ ਇਹ,
ਫਰਜ਼ਾਂ ਤੋਂ ਮੂੰਹ ਮੋੜੇ ਨਾ,
ਸਭਨਾ ਦਾ ਜੀਵਨ ਮਿਹਕਾਉਂਦੀ ਇਹ,
ਖੁਦ ਇਸ ਨੂੰ ਵੀ ਤਾਂ ਖਿੜ੍ਹਨ ਦਿਓ ।

ਸਭ ਕੰਮਾਂ ਨੂੰ ਕਰ ਲਵੇਗੀ,
ਹਰ ਮੁਸ਼ਕਿਲ ਨੂੰ ਜਰ ਲਵੇਗੀ,
ਸਭ ਦੇ ਸੁਪਨੇ ਸੱਚ ਕਰੇਗੀ,
ਇਸਨੂੰ ਖੁਦ ਤਾਂ ਸੁਪਨੇ ਬੁਨਣ ਦਿਓ ।

ਏਕਜੋਤ ਕੌਰ

ਬਚਪਨ

ਜ਼ਿੰਦਗੀ ਦੇ ਓਹ ਖੂਬਸੂਰਤ ਪੱਲ
ਅੱਜ ਬੱਸ ਯਾਦਾਂ 'ਚ' ਨੇ
ਜਦੋਂ ਅਸੀਂ ਬੇਫਿਕਰ ਸੀ,
ਅਨਜਾਣ ਸੀ ਜਹਾਂ ਤੋਂ,
ਮੁਸ਼ਕਿਲਾਂ ਦਾ ਨਾਮੋ ਨਿਸ਼ਾਨ ਨਹੀਂ ਸੀ,
ਨਾਸ ਮਸਤ ਰਹਿੰਦੇ ਸੀ ਮਸਤੀ 'ਚ'
ਉਹ ਸਮਾਂ ਸੀ ਸਦਾ ਬਚਪਨ ॥

ਕਿਨਾ ਸੋਹਣਾ ਹੁੰਦਾ ਹੈ ਬਚਪਨ ਦਾ ਹਰ ਪ
ਹੱਸਣਾ-ਹਸਾਣਾ, ਰੋਣਾ-ਰੁਆਣਾ
ਖੇਡ ਖੇਡ 'ਚ' ਵਕਤ ਬੀਤ ਜਾਣਾ,
ਪੂਰਾ ਦਿਨ ਮਸਤੀ ਦੀ ਕਸ਼ਤੀ 'ਚ'
ਧੁੱਪ, ਠਮਡ, ਮੀਹ ਦੀ ਕੀ ਮਜ਼ਾਲ
ਜੋ ਖਲਲ ਪਵੇ ਮਸਤੀ 'ਚ'

ਹਰ ਗੱਲ 'ਚ' ਸੁਆਲ,
ਹਰ ਸੁਆਲ 'ਚ' ਜੁਆਬ,
ਜਿਵੇਂ ਆਦਤ ਸੀ ॥
ਨਾ ਕੋਈ ਰੋਕ, ਨਾ ਕੋਈ ਟੋਕ,
ਜੋ ਚਾਹਿਆ ਓਹ ਲਿਆ ਆਪਣੀ ਸੀ ਮਨ

ਬਚਪਨ ਦੇ ਓਹਨਾ ਖੂਬਸੂਰਤ ਪਲਾਂ ਨੂੰ
ਅੱਜ ਬੱਸ ਯਾਦ ਕਰਦੇ ਹਾਂ ॥
ਸੋਚਦੇ ਹਾਂ ਕਾਸ਼ !
ਫਿਰ ਮੁੜ ਕੇ ਵਾਪਸ ਆਏ ਉਹ ਸਮਾਂ
ਜਦੋਂ ਅਸੀਂ ਬੱਚੇ ਸੀ ॥



ਏਕਜੋਤ ਕੌਰ

MAHARSHI VALMIKI COLLEGE OF EDUCATION (UNIVERSITY OF DELHI) GEETA COLONY, DELHI-110031 ANNUAL PHOTOGRAPH (2014-15)



- 1st ROW SITTING (LEFT TO RIGHT):** DURGA SHANKAR KUMAR, MOHIT DIXIT, PRIYANKA, ANKITA GUPTA, KOMAL YADAV, SHIVANGI YADAV, DELFIYA GEORGE DEEPIKA ARYA, AMREEN, DIVYA THAKUR, ADITI, SONIA, TOKO APPU, KSHAMA BHATTI, KANTA, SAVITA
- 2nd ROW SITTING (LEFT TO RIGHT):** AVTAR SINGH, DEEPAK SHARMA, RAHUL, VIVEK YADAV, NAVNEET KUMAR, PRAMOD, Mohd. AFAQ, MANISH RAWAT, SUMIT DAHIYA, NISHANT NASHIER, DEEPAK TOMER, KESHAV, SUHAIL-UR-REHMAN, DEEPAK DUHAN, RAVIKA CHAUHAN, SHAGUN, NARENDER
- 3rd ROW SITTING (LEFT TO RIGHT):** SANOJ KUMAR, DR. RAKESH KUMAR, MR. JATIN JAIN, MR. ASHOK KUMAR SINGH, MR. PRITAM DOGRA, MR. RIYAZ HASHMI, MR. RAGHAVENDER PRAPANNA, MR. VINOD KUMAR A., DR. RAMJEE DUBEY, DR. PARMESH KUMAR SHARMA(PRINCIPAL), DR. SUSHIL DHIMAN, DR. VANDANA GUPTA, DR. SATVEER S. BARWAL, MS. MEENAKSHI CHAWLA, MS. ANJANA CHILLAR, MS. RAMA NEGI, DR. GOPAL RANA
- 4th ROW STANDING (LEFT TO RIGHT):** DINESH KUMAR, UMESH THAKUR, RAM SHANKAR, BIJENDRA, DHARMENDER, VISHWAJEET NAGAR, VISHWA MOHAN, SANTLAL, JAYNATH CHAUDHRY, DEEPAK KUMAR VERMA, PRATEEK MALIK, PUSHPENDER, NIKITA GOEL, SARIKA GAUTAM, RITIKA, MANJU CHAUHAN, ANJU DALAL, DEEPIKA JAYARA, RICHA, DEEPAI MATHRUR, DEVIYANSHI, PRATIMA SHUKLA, ARADHNA BHARDWAJ, RENU, ATTIIYAH HASAN, SARITA, PRAMOD KUMAR
- 5th ROW STANDING (LEFT TO RIGHT):** MR. MAHENDER, JASKIRAT KAUR BHATTA, SAMDISHA, SAKSHI JAIN, DEEPA TI TANDON, MONIKA MITTAL, JYOTI, MANJU, SHABINA, AISHA PARVEEN, ANURADHA, MONIKA TANWAR, MANPREET KAUR, SONIKA, RAJWINDER KAUR, EKJOT KAUR, ALPANA,
- 6th ROW STANDING (LEFT TO RIGHT):** DIANA, JARNAIL SINGH, RAHUL, VIVEK DHYANI, SATYAM, ANUJ KUMAR, Mohd. RAZA, JASLEEN KAUR, GRISHMA, MANISHA, GEETANJLI MAURYA, ANURADHA, ASHA, SONAM
- 7th ROW STANDING (LEFT TO RIGHT):** PRATIBHA, BIPUL, MUKUL, SUROJIT GANGULY, RAHUL KUMAR JHA, SURJEET, SUMIT, PANKAJ, SACHIN, CHITRANJAN JHA, SUSHIL, LAKSHMAN SAURAV GAUTAM, CHOTTU, VIKASH UPADHAYA, SUDHAKAR, ANKIT GUPTA, DHARM SINGH, LOKESH, VISHNU, SRIKANT